• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १५ | गौराब्द ४८३, मास—श्रीधर १६, वार—वासुदेव रविवार, ३२ श्रावण, सम्वत् २०२६, १७ अगस्त १९६९ | संख्या २-३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीकुन्तीदेवी वर्णितं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १।८।३१-४३)

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥

हे कृष्ण ! जिस समय तुम्हारी माता गोपराज-पत्नी यशोदाने दधिभाण्डमें छेद करनेके अपराधमें तुम्हें बन्धन करने की इच्छासे हाथमें रस्सी ग्रहण की, उस समय तुम्हारे नेत्रोंका अञ्जन आँसुओंसे मिलकर गालोंके ऊपर बहने लगा। उस अवस्थामें तुम माता की ताड़नाके भयसे अत्यन्त भयभीत तथा नतमस्तक होकर अत्यन्त चिन्तामग्न हो खड़े थे। साक्षात् महाकालके भी भयस्वरूप तुम्हारी उस अवस्थाका स्मरण कर अब भी मैं विमुग्ध हो जाती हूँ ॥३१॥

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्त्तये ।
यदोः प्रियास्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

जिस प्रकार मलय पर्वतकी कीर्ति बढ़ानेके लिए चन्दन वृक्षका जन्म होता है, उसी प्रकार पुण्यश्लोक परम भक्त प्रिय युधिष्ठिर अथवा पवित्र कीर्तियुक्त यदु महाराजकी कीर्तिको बढ़ानेके लिए उनके वंशमें जन्मरहित भगवानने जन्म ग्रहण किया है, ऐसा कोई-कोई कहा करते हैं ॥३२॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥

इस जगतके मंगलके लिए और असुरोंका विनाश करनेके लिए स्वयं जन्मरहित होने पर भी तुम्हारी प्रार्थना करने के कारण पूर्वजन्म में सुतपा और पृश्निरूपधारी दम्पति वसुदेव–देवकी का पुत्रत्व तुमने ग्रहण किया है—ऐसा और कोई कहा करते हैं ॥३३॥

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥३४॥

जिस प्रकार अत्यधिक भारके कारण समुद्रमें नाव डूबने लगती है, उसी प्रकार अत्यन्त असहनीय पापोंके भारके कारण नष्टश्री पृथिवीका भारहरण करनेके लिए तुम ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे—ऐसा भी कोई-कोई कहा करते हैं ॥३४॥

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥

हे गोविन्द ! इस संसारमें तुम्हारे परमानन्दमय स्वरूपको न जाननेके कारण अज्ञानजनित अविद्याका उदय होता है । उस अविद्याके कारण जीवकी अपने देहके प्रति आत्मबुद्धि होती है और इस देहात्मबुद्धिद्वारा कामका उदय होता है । इस काम-प्रवृत्ति द्वारा अत्यन्त पीड़ित जीवोंकी दुःखनिवृत्तिके लिए नित्य श्रवण और स्मरण करने योग्य अपनी लीलाओं को प्रकटित करने के लिए तुमने जन्म ग्रहण किया है—यह भी कोई-कोई कहा करते हैं ॥३५॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ,

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

जो सभी व्यक्ति सर्वदा ही तुम्हारी लीला–कथाका श्रवण–कीर्त्तन–स्मरण करते हैं अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा करने पर उसका अभिनन्दन करते हैं, वे ही जन्म-मृत्यु के चक्रको सर्वदा के लिए नष्ट कर देनेवाले तुम्हारे चरणकमलोंका अति शीघ्र ही दर्शन प्राप्त करते हैं ॥३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो
जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्
परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥

हे भगवन् ! तुम सर्वदा ही अपनी लीलाका प्रकाश करनेके लिए उत्कण्ठित रहते हो । हम लोगोंने राजाओं को दुःख दिया है; अतएव उन लोगोके विद्वेष–पात्र होनेके कारण हमारे लिए तुम्हारे पादपद्मोंको छोड़कर और कोई आश्रय नहीं है । ऐसे तुम्हारे बन्धु और अनुगत आश्रित हमें क्या तुम परित्याग करने की इच्छा करते हो ? ॥३७॥

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥

जिस प्रकार इन्द्रियोंके मूल-नियन्ता जीवात्माके चले जानेसे शरीरका जड़ीय नाम और रूप कुछ भी नहीं रहता, उसी प्रकार यदि तुम्हारा अदर्शन हो अर्थात् तुम यदि हमारी ओर न देखो, तो ख्याति और समृद्धिशाली यदुओं के साथ युक्त पञ्च पाण्डव और मेरा कितना मूल्य है ? अर्थात् सैकड़ों बलसे बलवान होने पर भी तुम्हारे अभावमें सभी कुछ निष्फल है । तुम ही हमारे एकमात्र बल और आश्रय हो ॥३८॥

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥३९॥

हे कृष्ण ! इस समय जिस प्रकार हमारे द्वारा पाल्य–भूमि तुम्हारे ध्वजवज्रांकुशपताकादि चिह्नयुक्त तुम्हारे पदयुगलद्वारा चिह्नित होकर शोभा पा रही है, तुम्हारे चले जाने पर उस प्रकार शोभित न होगी ॥३९॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तः श्रेधन्ते तव वीक्षिताः ॥४०॥

विशेषतः तुम्हारे दर्शन-प्रभावसे ये सभी प्रदेश उत्तम फल प्रदान करते हैं। ये औषधि, लताएँ और वन-पर्वत-नदी-सागरसमूह सुसमृद्ध होकर बढ़ रहे हैं ॥४०॥

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्त्ते स्वकेषु मे ।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥

हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वरूप ! इस समय तुम प्रस्थान करो या अवस्थान करो—इसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं है। तुमसे केवल यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरे आत्मीय पाण्डव लोग और यादव लोगोंके प्रति मेरा जो अत्यन्त तीव्र स्नेहबन्धन है, उसे तुम काट डालो ॥४१॥

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥४२॥

हे माधव ! जिस प्रकार गङ्गा किसी भी बाधाको बाधा न समझते हुए अपने स्रोतको सागर की ओर बहा ले जाती है, उसी प्रकार मेरी बुद्धि भी अव्यभिचारिणी और साध्वी बनकर तथा बाधामुक्त होकर तुम्हारी निरवच्छिन्न साक्षात् प्रीतिको प्राप्त करे ॥४२॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥

हे कृष्ण ! हे अर्जुनके सखा ! हे यादवश्रेष्ठ ! तुम पृथ्वीके प्राणियों के प्रति द्रोह आचरण करनेवाले राजाओंके समूहका विनाश करनेवाले हो, तुम अक्षय प्रभावयुक्त वैकुण्ठ और गोलोकके एकमात्र पति हो तथा गो-ब्राह्मण-देवताओं के दुःखको दूर करने के लिए तुम्हारा अवतार हुआ है। हे भगवन् ! हे योगेश्वर ! हे विश्व के गुरु ! ऐसे आपको मैं प्रणाम करती हूँ ॥४३॥

॥ इति श्रीकुन्तीदेवी वर्णितं श्रीकृष्णस्तोत्रम् समाप्तम् ॥

भाई, कुतार्किक !

मैं श्रौतपंथी हूँ और तुम कुतार्किक हो। हम दोनों भाई मनुष्यों के सिर पर बैठकर—शरीर पर लात मारकर, पृथिवीमें विचरण करते हैं। हम दोनों ही भाई हैं; किन्तु परस्परमें आकाश-पातालका भेद है। अतएव हम दोनोंकी माताओंका परिचय न देनेसे हम दोनों एक दूसरेको समझ नहीं सकेंगे। हमारी माताओं का परिचय तत्त्ववादी और मायावादी लोगोंने पूर्वसे ही दिया है।

तत्त्ववादियों का कहना है कि श्रीहरि ही नित्य परतत्त्व हैं, वे ही अखिल-आम्नाय-वेद्य हैं, जीव सभी परस्पर भिन्न हैं, जीव भगवान से भिन्न हैं, जीवमात्र ही वैष्णव हैं, विष्णुकी पादपद्म-प्राप्ति ही जीवकी मुक्ति है।

मायावादियों का कहना है—जगत मिथ्या है, मानवज्ञान मिथ्या है—व्यवहारिक मात्र है। तर्क द्वारा ही 'एकमेवाद्वितीयम्' की स्थापना की जा सकती है। अध्यास (गाढ़-अभिनिवेश) के कारण अज्ञानकी क्रिया तात्कालिक होने पर भी उसकी वास्तव सत्ता नहीं है। किन्तु लौकिक प्रमाणके आश्रयमें रावण की सीढ़ी बनाने की नीतिको अपनाकर निर्विशेष तत्त्वको ही चरम तत्त्वके रूपमें मानेंगे और दूसरोंको भी ऐसा ही समझायेंगे।

अतएव हम दोनों भाईयों का दोनों माताओं के परिचयमें थोड़ा-सा भेद हो गया है; इसलिए हम दोनों वैमात्रेय (विमाताओं द्वारा उत्पन्न) भाई हैं। भाई कुतार्किक, मैं जो तुम्हें कुतार्किक कहता हूँ, उस दुर्नाम को मिटाने के लिए तुम अपने आपको श्रौतपन्थी कहकर झूठा प्रचार करते हो; यह तुम्हारे आचार-विचारमें स्पष्ट देखा जाता है।

तुम तुम्हारे आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़ेके विचार द्वारा एकतरफा आंशिक धारणा प्राप्त करते हो। उस धारणा पर भित्ति स्थापन कर रावणकी तरह सीढ़ी बाँधने जाकर मेरी उपास्य-वस्तु जगल्लक्ष्मीको तुम्हारे अधोनस्थ एक भोग्य-वस्तु के रूपमें समझना चाहते हो। उसी कल्पना-समुद्रमें तैरते हुए तुम कभी-कभी कृष्ण बनना चाहते हो। दूसरोंके द्रव्य हरण करनेके पापसे मुक्त होनेके लिए सबको एक विचार कर बाउल धर्मका प्रचार करते हो। भोक्ता के वेशमें अपनेको भगवद्भोग्य वस्तुओंके भोक्ता बनाना चाहते हो। कभी-कभी प्राकृत सहजिया होकर नाना देवदेवियोंके उपासक हो पड़ते हो। कभी-कभी समन्वयवादीका अभिनय कर जगतके मूर्ख व्यक्तियोंको ठगते फिरते हो। कभी-कभी कहते हो—'पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः'।

कभी-कभी यह विचार दिखलाते हो कि माँ और वामा (भोग्या स्त्री) में वास्तविक कोई भेद नहीं है—केवल बद्ध विचारसे ही भेद है। कभी-कभी अपनेको मुक्ताभिमान कर मातृबुद्धि परित्याग कर विकल्पना द्वारा अपनी माँके प्रति भोग्य-बुद्धि करते हो और तर्कको सहायतासे "मुझे अच्छा लगता है"—ऐसा कहकर प्रेयः पन्थी बनकर श्रेयःपन्थी या श्रौतपन्थी तुम्हारे भाईपर हजारों प्रकारसे आक्रमण करते हो। किन्तु जब तुम्हारे मंगलप्रार्थी भाई स्नेह और प्रेमके वशीभूत होकर तुम्हें भाई कहकर सम्बोधन करता है, उस समय तुम आँखें लाल कर उसे मूर्ख कहकर अपने दलमें खींच लाने की चेष्टा करते हो। उसके साथ नाना प्रकारसे तर्क-वितर्कादि करते हो, शरीर के बलपर तुम्हारे भाईको भी 'वास्तव श्रौतपन्थी' कहने के बदलेमें 'प्रच्छन्न तार्किक' कहकर अपनी कुतर्क-प्रवृत्ति रूपी कलङ्क को छिपाना चाहते हो। मन ही मन तुम यह अच्छी तरहसे जानते हो कि तुम्हारी कुतर्क-चेष्टा द्वारा श्रुति-व्याख्या के आवरणमें प्रच्छन्न बौद्धमत का ही पोषण हो रहा है। तुम्हारी ये सभी छल-प्रवृत्तियोंको देखकर तुम्हारे श्रौतपन्थी भाई कुतर्कका आश्रय ग्रहण न कर महाजनोंके निकट वेद-व्याख्या श्रवण करते हैं। इससे तुम कठिन सङ्कटके अधीन हो पड़ते हो। तुम्हारी ऐसी विपत्ति देखकर तुम्हारे श्रौतपन्थी भाईको बहुत दया आती है; किन्तु तुम उस दयाको अपने भाईकी मूर्खता समझते हो।

भाई, कुतार्किक ! और कितने समय तक अपने कुतर्क के आग्नेयगिरि को राखसे ढककर रखोगे ? पद-पदपर तुम्हारा कुतर्कानल जल उठता है। 'सविशेषत्व', 'सर्वशक्तिमत्ता' आदि भगवद्गुणों पर आक्रमण करना ही तुम्हारे कुतर्कका स्वभाव है। तुम्हारा आक्रमण करने का स्वभाव ढका रहने पर भी जरा-सा आवरण खोल देने पर प्रज्ज्वलित हो उठता है। अतएव कुतर्कके विरुद्धमें तुम्हारा श्रौतपन्थी भाई 'न्यायसुधा' की सहायतासे 'पर्वता वह्निमान् धूमात्' आदि विचार दिखला कर तुम्हारी कुतर्केच्छामूला ईश्वरनाश-प्रवृत्ति या Vandalism को आँखोंमें अँगुलियाँ देकर दिखला देता है। इसलिए तुम अपने वेदानुग भाईको तुम्हारा 'वैमात्रेय' अर्थात् 'तुम्हारी अपनी जननीके सपत्न्युचित ईर्षाभावका सन्तान' समझते हो। क्यों भाई, तुम ये सभी कपटताएँ छोड़कर सरल नहीं बन सकते ? ज्ञानका विषय दो भागोंमें विभक्त होने पर भी मैं तुम्हारा जो एक अंशीदार हूँ, समन्वयवादके लिए स्वीकार करने पर भी कामके समयमें मुझे वंचित क्यों करते हो ? मेरी कोई सम्पत्ति नहीं है। तुम ही ज्ञानके एकछत्र मालिक हो—ऐसा अहङ्कार तुम्हें क्यों है ? तुम क्या यह नहीं जानते कि भक्तिद्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है ? जबर्दस्ती तुम जो यथार्थ बातको अस्वीकार करते हो, यह तुम्हारा सम्पूर्ण अज्ञान है। तुम केवल मुखमें ही 'नारायण' 'नारायण', उच्चारण करते हो। तुम्हारी धारणानुसार वे अन्य

देवताओंके सहित एक समान हैं; 'माया ही ब्रह्म' या 'ब्रह्म ही माया' आदि तुम्हारी बातें यथार्थ ज्ञानके परिचायक हैं या उसके विपरीत हैं ? 'सभी घट तुम्हारे हैं' और 'सभी घट तुम हो'—यह बात कहकर धृष्टता क्यों करते हो ? यह क्या 'अहङ्कार—विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते'—इस मतका स्पष्ट उदाहरण नहीं है ? तुम कभी-कभी 'कर्त्ताभिजा' बनकर भक्तका अभिनय करते हो, कभी-कभी आउल-बाउल-नेड़ा-कर्त्ताभिजादि वेशमें तुम्हारे भाईकी सम्पत्ति लूटने की शैतानी दिखलाते हो। यह स्वभाव क्या निर्गुणता है ? हरि ही एकमात्र निर्गुण हैं; तुम्हारे कल्पित हरि निर्विशेष हैं। तुम दूसरोंको ठगनेके लिए कृष्णलीलापर विश्वास नहीं करते। कृष्णलीलाका आदर्श स्वयं उपभोग कर जगतमें नाना प्रकारके कलङ्क फैलाते हो।

भाई, तुम क्यों कृष्णके स्मिताधरको अनित्य, वंशोध्वनिको अनित्य, अपाङ्गदर्शनको अनित्य, कृष्णके मथुरामें माल्य-धारणको अनित्य और रासक्रीडाको अनित्य समझते हो ? ये सभी धारणाएँ ही कुछ नीतिरहित मनुष्यों की कल्पना द्वारा उत्पन्न हैं—यह क्या तुम नहीं जानते ? भगवत्ता लोप पाकर निर्विशेष अवस्था ही चरम और सभी का मूल है—ऐसा कहकर तुम त्रिताप-दग्ध संसारमें मजा लूटनेका प्रयास करते हो। नित्य शाश्वत भगवद्वस्तु कृष्णकी लीलाका अनित्यत्व प्रतिपादन कर स्वयं गुप्त रूपसे उन सभी भोगोंमें रत रहकर परदार, परद्रव्य आदि अपहरण कर निन्दा के पात्र बन रहे हो। यह क्या तुम्हारी साधुताका परिचय है, या और कुछ है ?

तुम निर्विशेषवादी बनकर तर्कका जाल बिछाकर निर्विशेष भावके नित्यत्व-स्थापन-छलनासे भगवानके उद्देश्यसे इस जगतमें अनुष्ठित शुद्धभक्तोंकी क्रियाओंको निर्बोध चेष्टा कहकर प्रतिपादन करते हो। स्वयं नास्तिक बनकर मुक्तवायु-सेवन द्वारा आनन्द उपभोग करते हो। चर्व्य, चूष्य, लेह्य, पेय द्रव्योंको स्वयं ही लूटोगे ? तुम्हारे मर जाने पर उन द्रव्यों को "उड़ो खै गोविन्दाय नमः"—कहकर भक्त बननेका अभिनय करोगे—ये सभी शैतानी क्या तुम्हारा चतुर श्रौतपन्थी भाई जान नहीं सकता, ऐसा सोचते हो ? तुम्हारी ये सभी चेष्टाएँ अपने पिता ज्ञानकी सम्पत्तिको बन्धक देना मात्र है। ऐसा होने पर भी तुम मेरे अंशका बन्धक देकर स्वयं अपना ही अकल्याण करोगे—यह देखकर मुझे अपार कष्ट होता है।

भाई ! तुम अपने अंशीदारको उसके अंश से वंचित न करो। यदि करना भी चाहो, तो तुम्हारी वंचना प्रकाशित हो जायगी। प्रकाश्य तर्कपन्थी होकर भोगीका पोषाक पहनकर मायावादी लोग जो दौरात्म्य करते हैं, उसके द्वारा शुद्धभक्तोंकी सम्पत्ति पर आक्रमण करना होता है। समन्वयवादकी छलनासे विवादप्रिय

दो बिल्लियोंकी सम्पत्तिको विभाग करने जाकर एक बन्दरने उनकी सम्पत्तिको ग्रहण करनेकी जो पिपासा दिखलाई, वह शिशुपाठ्य ईशपकी कहानियों में वर्णित है। तुम फिरसे उसका द्वितीय अभिनय करनेके लिए क्यों व्यस्त रहते हो ?

तुम क्या यह यह नहीं जानते कि कृष्णभक्त तुमसे बहुत अधिक चतुर हैं ? वे तुम्हारे समान जड़ विषय भोग्य को या कर्मकाण्डको शुद्धज्ञान के 'साधन' के रूपमें स्वीकार नहीं करते। शुद्धज्ञान-सम्पत्तिके अंशीदार वास्तविक श्रौत-पन्थी तुम्हारी तरह कपट-ज्ञानीकी विचार-प्रणालीसे पृथक् होकर अपने अंशमें जिस चिद्विलासका दर्शन करते हैं, वह क्या तुम्हारे चिन्मात्रवादकी माया-मरीचिकाके प्रलोभन द्वारा नष्ट हो जायगा—ऐसा सोचते हो ?

इन सभी बातोंको सुनकर भी तुम क्यों अपनी विषय-सम्पत्तिको श्रौतपन्थीके विरुद्ध में, उनकी सम्पत्ति लूटनेके लिए श्रीचैतन्यदेवके जन्मस्थान-निर्णय रूपी भवंडर में फेंक रहे हो ? इस भवंडरसे तुम्हें उतारने के लिए और मेरे अंशको प्राप्त करने के लिए मुझे थोड़ासा उद्वेग प्राप्त करना पड़ा है। यदि किसी व्यक्तिका द्रव्य दूसरा व्यक्ति जबर्दस्ती छीनकर भागनेकी चेष्टा करें, तो उसके पीछे-पीछे भागना पड़ता है। अतएव मेरे अंशको नष्ट करनेके लिए तुम्हारी ऐसी कुपिपासा क्यों हुई है ?

तुम अपने अंशमें तर्क-वितर्कका जहाज लेकर गौरजन्मस्थानके दूसरे तीरमें खड़े हो। किन्तु मैं तुम्हारे अंशके लिए लालायित नहीं हूँ। मैं तुम्हारे कुतर्क और ज्ञान-गरिमाका अंश प्राप्त करनेकी आशा नहीं करता। उन्हें मैं मल-मूत्रकी तरह परित्याग करनेके पश्चात् सुस्थ होकर महाजनों का अनुगमन कर निश्चित हूँ। मेरे लिए तो कोई भी चिन्ता नहीं है। मैं तुम्हारी सम्पत्तिपर कब्जा जमानेके लिए दौड़ता नहीं। मेरी सम्पत्तिपर कब्जा करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। मैं निर्मत्सर साधुओंका वारिश हूँ। तुम उसके प्रतिपक्षमें मात्सर्य-सम्पत्ति द्वारा धनी हो, यह मैं खूब जानता हूँ। अर्थात् हिंसा ही तुम्हारा धर्म है और अहिंसा ही मेरा धर्म है। श्रौतपन्थी हिंसा-परायण हैं और कपट-श्रौतपन्थीके वेशमें तुम्हारे जैसे कुतार्किक अहिंसापरायण हैं—ऐसा कहकर तुम मूर्ख लोगोंको धोखा दे सकते हो; किन्तु मैं तुम्हारी कपटताको स्पष्ट ही दिखला सकता हूँ।

मैं कदापि परदार, परद्रव्य चोरी कर रावणका पक्ष अवलम्बन नहीं करता—मैं आरोहपन्थी नहीं हूँ, मैं तो अवतारवादी हूँ। तुम अवतार-विद्वेषी और अधिरोहवादी हो। हम दोनों में वैमात्रेय भाईका सम्बन्ध चिर-दिनसे ही है और भविष्यमें भी रहेगा। भगवान श्रीश्रीगौरहरिके निर्मल धर्मको कलङ्कित करने के लिए तुमने जो अवैध प्रस्ताव किया है,

उसमें मेरा अनुमोदन नहीं है। अतएव तुम क्षुब्ध होकर तुम्हारे एकमात्र सम्बलरूप मत्स्य-रसाको यदि मीठी चीनीसे अच्छी तरहसे छिपाकर मेरे पास ऐसी मिलावटकी चीज चलाने की चेष्टा करोगे, तो तुम्हारी चालाकी को दिखलाकर असली बातका भंडाफोड़ कर दूंगा। उस समय सभी लोग तुम्हारा यथार्थ स्वरूप जान सकेंगे। तुम्हारी तरह कोटि-कोटि ईश्वर-विश्वासरहित व्यक्तियोंकी चेष्टाओंकी अन्त्येष्टि-क्रिया करने का भार मुझे है। अतएव तुम विश्वके प्रलयतक भी तुम्हारा अपना स्वभाव दिखलाकर मेरी सम्पत्तिके निकट कदापि पहुँच नहीं सकोगे।

काँचकी बोतलमें रखे हुए मधुका पान करने के लिए काँचके बाहर रहकर मक्खी जिस प्रकार चेष्टा करती है, तुम्हारा अभिनय भी ऐसा ही है। इससे साधारण लोग तुम्हारी इन्द्रजाल-विद्यासे मुग्ध हो सकते हैं; किन्तु कोई भी माध्वगौड़ीय वैष्णव तुम्हारी चातुरीके प्रलोभनमें आकर कदापि नहीं फँसेगा। वे लोग वास्तवमें श्रीचैतन्याश्रित हैं; वे 'तुम्हारे चैतन्य', 'गणेशके चैतन्य', या 'मनःकल्पित चैतन्य' की अपेक्षा नहीं रखते। भाई! ये सभी बातें महाजनविरोधी लोगोंके कुतीक्ष्ण मस्तिष्क की कल्पनाएँ मात्र हैं।

भाई, मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी सम्पत्ति हूँ; तुम श्रीचैतन्य महाप्रभुके विरोधी होकर 'तुम्हारे चैतन्य' द्वारा श्रीचैतन्यदेवकी सेवा दिखलाने जाकर तुम्हारे स्वरूपका परिचय दे रहे हो; अर्थात् श्रीचैतन्यदासों के साथ तुम्हारा जो नित्य विरोध है, वह तुमने भली प्रकारसे दिखला दिया है। तुम यदि अपनेको चैतन्यदास कहकर तुम्हारे तुच्छ कार्यकी सिद्धिके लिए चेष्टा करोगे, तो श्रीचैतन्यदेव उससे प्रसन्न न होंगे। श्रीचैतन्यदेवकी प्रसन्नता या इन्द्रियतृप्ति कैसे होगी, यह क्या तुमने सुना है? भाई कुतार्किक, एकबार क्या श्रीचैतन्य-वाणी मेरे निकट श्रवण करोगे? श्रीचैतन्यमहाप्रभुका कहना है—

"निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥"

अर्थात् भगवद्भजन करनेवाले निष्किंचन भक्तोंके लिए जो इस भवसागरको पार करना चाहते हैं, विषयी व्यक्तियोंका और स्त्रियोंका दर्शन विषभक्षण करनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त असाधु और अकल्याणकारी है।

श्रील सनातन गोस्वामीपादको श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने जो उपदेश दिया था, उसे क्या एकदम भूल गये हो?

"असत्सङ्ग—त्याग— एइ वैष्णवाचार।
स्त्रीसङ्गी एक असाधु कृष्णाभक्त आर॥"

स्त्रीसङ्गी एक असाधु है और कृष्णका अभक्त नास्तिक दूसरा असाधु है। इस असत्सङ्ग का त्याग करना ही वैष्णवाचार है। इस बार के लिए मैं विदा माँगता हूँ। श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छासे दुबारा भेंट होगा।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(साधु सङ्ग)

१६—बद्धावस्थामें सत्सङ्ग क्या भक्तिका अङ्ग है ?

"बद्धावस्थामें सत्सङ्ग केवल भगवान श्रीहरिके प्रति रुचि उत्पादन करनेवाला है, किन्तु भक्तिका अङ्ग नहीं।"

—त. सू. ३३ वाँ सूत्र

१७—भक्तिप्रदा सुकृति क्या है ?

"साधुसंग ही एकमात्र भक्तिप्रदा सुकृति है।"

—जै. ध. १७ वाँ अ.

१८—कपटताके साथ साधुसङ्गका अभिनय कैसा होता है ?

"बहुतसे लोगोंका विचार है कि जो वास्तवमें 'साधु' कहलाने योग्य हैं, ऐसे व्यक्तियों की पदसेवा, उन्हें प्रणाम, उनका चरणामृत-सेवन, उनके प्रसादकी सेवा और उन्हें कुछ अर्थ देने पर ही साधुसंग होता है। इन सभी कार्यों द्वारा साधुओंका सम्मान अवश्य होता है और इनसे कोई न कोई लाभ अवश्य है। किन्तु यही यथार्थ साधुसंग है, ऐसी बात नहीं है। केवल शुद्धभक्त साधुओंका स्वभाव और सच्चरित्रताका बहुत यत्नके साथ अनुसन्धान-पूर्वक उनका निष्कपट रूपसे अनुसरण करने पर ही विशुद्ध कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है। विषयी लोग साधुओंको प्रणाम कर उनसे कहा करते हैं—'हे दयामय, मुझे कृपा करें। मैं अत्यन्त दीन-हीन हूँ। मेरी संसार-बुद्धि कैसे दूर होगी ?' विषयी व्यक्तियोंके ये वाक्य कपट-वाक्य मात्र है। वे लोग मन ही मन सोचते हैं कि केवल अर्थ-प्राप्ति ही लाभ है और विषय-संग्रह ही जीवनका उद्देश्य है। उन लोगोंके हृदयमें श्रीमद दिन-रात जाग्रत रहता है। केवल प्रतिष्ठा-लाभकी वासनासे और 'साधुओं के शापसे मेरे विषय नष्ट न हों'—इस भयसे उन लोगों द्वारा कपट दैन्य और कपट भक्तिका अभिनय दिखलाया जाता है। यदि साधु उन्हें ऐसा आशीर्वाद करें—'तुम्हारी विषय-वासना दूर हो और तुम्हारे धन-जनादि आदि नष्ट हो जाय', तो विषयी लोग कहेंगे—'हे साधु महाराज ! आप हमें ऐसा आशीर्वाद न दें। ऐसा आशीर्वाद केवल शापमात्र है, सर्वदा अहित-जनक वाक्य है।' साधुओंके प्रति विषयी व्यक्तियोंका ऐसा व्यवहार सम्पूर्ण कपटतामात्र है। इससे कदापि आत्म-कल्याण नहीं होता। जीवनमें बहुतसे साधुओंसे मिलन होता है। किन्तु हम लोगोंके कपट-व्यवहारके कारण हम लोग साधुसंग का कोई फल प्राप्त नहीं करते। सरल श्रद्धाके साथ यदि हम भजनोन्नत साधु-

वैष्णवके सच्चरित्रका निरन्तर यत्नपूर्वक अनुसरण कर सकें, तो साधुसंगके प्रभावसे आत्मोन्नति होती है। इस बातको सर्वदा स्मरण-रखकर यथार्थ साधुके निकट जाकर उनका स्वभाव-चरित्र जानना चाहिए। हमारे स्वभाव चरित्रको भी वैसा ही बनानेके लिए चेष्टा करनी चाहिये। यही श्रीमद्भागवत-शास्त्रकी शिक्षा है।"

—साधुसंगका प्रणाली-विचार', ससंगिनी (क्षेत्रवासिनी) स. तो. १५।२

१९—सत्संग ग्रहण न कर क्या दुःसंगका त्याग होता है?

"केवल असत्संग त्याग करनेसे ही काम नहीं चलेगा। हम लोगोंका यही कर्त्तव्य है कि विशेष यत्नके साथ सत्संग करें।"

—'साधुसङ्गका-प्रणाली-विचार', ससङ्गिनी (क्षेत्रवासिनी) स. तो १५।२

२०—असद्गुरुका दुःसंग परित्याग कर सद्गुरुका सत्संग ग्रहण करना क्या अन्याय है?

"अयोग्य कुलगुरुको उनके द्वारा प्रार्थनीय अर्थ और सम्मानादि देकर उनके निकटसे विदा होकर सद्गुरु अन्वेषण करना अत्यन्त आवश्यक है।"

—'गुर्ववज्ञा', ह. चि.

२१—सङ्ग करनेके लिये कैसे वैष्णवका अनुसन्धान करना होगा?

"जिन्हें वैष्णव-संग करनेकी इच्छा है, वे अपनेसे श्रेष्ठतर वैष्णवका अन्वेषण कर उनका संग करेंगे।"

—श्री म. शि. १० म र.

२२—साधु लोग क्या सब समय ही पृथिवी में रहते हैं? साधुसंग दुर्लभ क्यों है?

"साधु लोग चिर दिन ही जगतमें हैं, केवल असाधु लोग उन्हें पहचान नहीं सकते; अतएव साधुसंग दुर्लभ है।"

—जै. ध. ७ वाँ अ.

२३—साधुके निकट क्या प्रजल्प करना उचित है? किसे यथार्थ साधुसंग कहा जाता है?

"साधुओंके निकट जाकर 'यह देश गरम है,' 'उस देश में शरीर अच्छा रहता है', 'यह बाबू बहुत अच्छा है,' 'इस साल चावल, धान कैसा होगा?'—ऐसे प्रलाप-वाक्य कहनेसे साधुसंग नहीं होता। साधु स्वानुभावानन्दमें विभोर रहकर हों, तो प्रश्नकारीके दो-एक बातोंका उत्तर देते हैं, किन्तु उससे क्या साधु-संग होता है या कृष्ण-भक्ति मिलती है? साधुओंके पास जाकर प्रीतिके साथ उनके संगमें भगवत्कथा-आलोचना ही साधुसंग है। उससे ही भक्ति होती है।"

—'साधुजन-संग' स. तो. १०।४

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सत्दर्भ-सार

(श्रीभक्ति-सन्दर्भ–२)

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥
(भा. ५।१८।१२)

भगवान् विष्णुमें जिनको निष्काम सेवा-प्रवृत्ति है, धर्म-ज्ञान-वैराग्यादि समस्त गुणोंके साथ देवता लोग उनके शरीरमें निवास करते हैं। हरिभक्तिविहीन व्यक्ति अन्याभिलाष-ज्ञान कर्म-योगादिमें लगा हुआ है या तुच्छ जड़ विषयोंमें आसक्त है। अतएव भगवान हरिके चरणोंमें उसकी केवला-भक्ति नहीं है और वह मनोधर्म द्वारा चालित होकर असत् बहिर्विषयोंके प्रति आकृष्ट है। ऐसे व्यक्तिमें महान् गुण कैसे सम्भव हैं ?

श्रीप्रह्लाद महाराजके इस कथन द्वारा जातरुचि भक्तमें भगवत्स्वरूपादिका ज्ञान स्वतः ही उदित होता है और उसके द्वारा विरूप-ज्ञानके प्रति वितृष्णा या कृष्णेतर विषयोंके प्रति वैराग्य उत्पन्न होकर भक्तियोगका अनुगमन करता है। इसका उदाहरणस्वरूप कहा गया है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम् ॥
(भा. १।२।७)

भगवान् वासुदेवके प्रति भक्तियोगका आचरण करने पर थोड़े ही समयमें थोड़ेसे श्रवण द्वारा ही वैराग्य और अहैतुक औपनिषद्-ज्ञान उदित होता है।

यहाँ 'अहैतुक' शब्द द्वारा शुष्कतर्कादिके अगोचर वेदके शिरोभाग उपनिषदोंके प्रतिपाद्य ज्ञानको समझना चाहिए। 'आशु' अर्थात् थोड़ा श्रवण करनेसे ही ऐसे भक्तियोग द्वारा भगवद्-ज्ञान और इतर विषयोंमें स्वाभाविक वैराग्य उत्पन्न होता है।

ज्ञान दो प्रकारका है—(१) अवरोहगत अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा प्राप्त और (२) आरोहपन्थागत अक्षजज्ञान या इन्द्रिय भोगमूलक खण्ड-ज्ञान। शुष्क-तर्क अनात्मपर है। आत्म-वस्तु विषयक ज्ञान स्वतःसिद्ध है। भोगमयी धारणाका आदर्श लेकर जो प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त होती है, उसमें शुष्कतर्ककी प्रधानता है। अनात्म-जगतमें ही उसकी योग्यता है। काल्पनिक ब्रह्मज्ञान देह और मनकी वृत्तिके अन्तर्गत

है। उसमें अचिद् अनुभूति वर्त्तमान है। अतएव अधोक्षज वास्तव - वस्तुके ज्ञानका उसमें कोई सन्धान नहीं पाया जाता। जो व्यक्ति औपनिषद् ब्रह्म-वस्तुको प्राकृत ज्ञानके अक्षज विचारके अन्तर्भुक्त करनेकी चेष्टा करते हैं, वे ही प्रकृतिवादी या मायावादी हैं। शुद्ध चिद्-विलास रसका अभाव ही शुष्कता है, जो जड़में ही वर्त्तमान है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥
(भा. १।२।८)

इसी बातको व्यतिरेक रूपसे कह रहे हैं कि यदि पुरुषोंका (जीवोंका) धर्म सम्यक् प्रकारसे आचरण किया जाय, किन्तु हरिकथामें रति (रुचि) न उत्पन्न हो, तो वह केवल परिश्रम मात्र हुआ। उसके द्वारा कोई भी लाभ नहीं हुआ। वासुदेव विषय हैं और उनके भक्त आश्रय हैं। विषयाश्रय सम्बन्ध-ज्ञानके अभावमें यदि भगवानकी लीला - कथादिके श्रवण-कीर्त्तन-स्मरणादिमें रुचि न उत्पन्न हो, तो वह केवल परिश्रम ही सार हुआ। हरिकथामें रुचि होना सब प्रकारसे एकमात्र मूल प्रयोजन और सर्वश्रेष्ठ अभीष्ट है। अतएव यही बात यहाँ कही गई है। उसके उपलक्षण रूपसे अपर-भजन अर्थात् कर्ममिश्रा और ज्ञानमिश्रा भक्तिमें रुचिकी बात कही गई है। यहाँ 'एव' शब्द द्वारा प्रवृत्तिलक्षणा स्वर्गादि भोगमय फलकी नश्वरता कही गई है। 'हि' शब्द द्वारा सभी काम्य-कर्मोंकी अनित्यफलप्रदता कही गई है। छान्दोग्य (८।१।६) में कहा गया है—"तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते..... भवति।" अर्थात् इस पृथिवीमें जिस प्रकार कर्मार्जित फल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परलोकमें स्वर्गादि फल भी ध्वंसशील हैं। यह उपपत्तियुक्त वैदिक प्रमाणस्वरूप है। 'केवल' शब्द द्वारा ज्ञानकी साधनयोग्यताको निवृत्ति-मात्र लक्षण धर्मका फल कहा गया है। अर्थात् निवृत्ति - लक्षण फलत्यागमय धर्म नश्वर साधन है। अतएव वह कदापि नित्यसिद्ध नहीं है। निवृत्तिलक्षण धर्मके फलद्वारा यदि मुक्ति प्राप्त हो, तो भी वह ध्वंसशील है। 'हि' शब्द द्वारा "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः"—श्वेताश्वर श्रुतिके इस प्रमाणकी बात कही गई है। नारदजीका कहना है (भा १।५।१२)—"नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।" अर्थात् अच्युत-भक्तिरहित नैष्कर्म्यरूप अमल ज्ञान भी शोभा नहीं पाता। ब्रह्माजीका कहना है (भा. १०। १४।४)—"श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये। तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।" अर्थात् कल्याणकारी भक्तिका पथ परित्याग कर जो व्यक्ति 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसा कहते हुए बोधलाभ के लिए कष्ट स्वीकार करते हैं, उनका परिश्रम शस्यरहित धान्यके भूसेको कूटनेकी तरह व्यर्थ है। देवताओंने

कहा—"आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः" अर्थात् विमुक्ताभिमानी व्यक्ति भक्तिहीन होनेके कारण अविशुद्ध बुद्धि के द्वारा अक्षज ज्ञानके आधार पर बहुत कष्टसे मायातीत परब्रह्मपदको प्राप्त कर लिया है—ऐसा सोचने पर भी भगवद् पादपद्मोंका अनादर करनेके कारण उक्त पदवीसे पतित होते हैं। इन सभी प्रमाणों द्वारा ज्ञानकी अयोग्यता कही गई है। "वासुदेवे भगवति" और "धर्मः स्वनुष्ठितः"—इन दोनों श्लोकों द्वारा भक्तिकी निरपेक्षता और ज्ञान-वैराग्यकी भक्तिके ऊपर निर्भरता कही गई है। भक्ति फलरूपसे निश्चित होने पर धर्मकी सफलता होती है।

बहुतसे व्यक्तियोंको हरिनाम श्रवण और कीर्त्तन करते देखा जाता है। किन्तु उसके द्वारा कृष्णप्रेमरूप फल प्राप्त न होने पर यही जानना चाहिए कि आलम्बनके(सम्बन्ध ज्ञानके) अभावके कारण प्राकृत फलभोगमय राज्यमें भोक्तृ-भोग्य ज्ञानके वशीभूत होकर स्थूल शरीर और मनके द्वारा अभक्तिका आश्रय लेनेके कारण केवल देह और मनका परिश्रम मात्र हुआ—भगवान हरिका साक्षात्कार प्राप्त न हुआ। प्राकृत सहजिया लोग आलम्बनके अभावमें कृत्रिम रूपसे जो भगवानकी लीलाका स्मरणादि करते हैं, वह भोग-भूमिकामें स्थित जीवोंकी इन्द्रियपरायणतामात्र है। वह हरिलीला-स्मरणमें बाधास्वरूप है। जो व्यक्ति लीलास्मरणका बहाना लेकर रागात्मिक भाव का कपट अनुकरण या अनुसरण करते हैं, वे नश्वर भोगमय-भूमिकाका अतिक्रम करनेमें कदापि समर्थ नहीं होते। सम्बन्ध ज्ञानके अभावमें कृष्णको जागतिक अन्यतम वस्तुकी तरह समझनेसे भोग बुद्धि आकर देह और मनको ग्रास कर लेती है। यह ज्ञानमिश्रा या कर्ममिश्रा भक्तिके अन्तर्गत है।

धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥
(भा. १।२।९-१०)

अभक्त भोगी लोग ऐसा सोचते हैं कि धर्म का फल अर्थ ही है, अर्थका फल काम ही है, कामका फल इन्द्रियप्रीति ही है और इन्द्रियप्रीतिका फल पुनः धर्म ही है। अर्थात् उन लोगोंके विचारमें धर्म-अर्थ-काम—ये तीनों त्रिवर्ग ही प्रयोजनीय वस्तुएँ हैं। किन्तु वास्तवमें विचार करने पर ऐसा नहीं है। इसी विषयको बतलानेके लिये उक्त दो श्लोकोंकी अवतारणा की गई है।

त्रैवर्गिक और आपवर्गिक भेदसे धार्मिक व्यक्ति चार श्रेणीमें विभक्त हैं—कर्मी, ज्ञानी, योगी और भक्त। कर्मियोंके विचारसे धर्मका फल अर्थ है, अर्थका फल काम है और कामका फल पुनः धर्म है। किन्तु ज्ञानी, योगी और भक्तके विचारसे धर्मका फल क्रमशः शमदमादि, यमनियमादि और श्रवणकीर्त्तनादि हैं। ज्ञानी और योगी लोगोंके मतानुसार 'अपवर्ग' कहनेसे 'मोक्ष' को समझा जाता है। किन्तु

भक्तके विचारसे 'भक्ति' ही अपवर्ग है। भागवतके ५।१९।१९ और १।१८।१० श्लोकोंके अनुसार 'अपवर्ग' शब्दका तात्पर्य श्रीहरिभक्तिसे ही है। स्कन्द-पुराणके रेवाखण्डमें भी कहा गया है—

निश्चला त्वयि भक्तिर्या सैव मुक्तिर्जनार्दने।
मुक्ता एव हि भक्तास्ते तव विष्णो यतो हरे॥

अर्थात् भगवानके प्रति जो निश्चला हरिभक्ति है, वही यथार्थ मुक्ति या अपवर्ग है। इस आपवर्ग्य-धर्म का फल 'अर्थ' कदापि नहीं हो सकता। अव्यभिचारी अर्थ का फल काम या विषय भोग नहीं है। काम या विषय भोगका फल इन्द्रियप्रीति नहीं है। जब तक जीव शरीरमें रहता है, तब तक ही वह इन्द्रियप्रीति प्राप्त करता है। जीवके धर्मानुष्ठान द्वारा जो प्रसिद्ध स्वर्गादि-फल प्राप्त होते हैं, वे कदापि वास्तविक उद्देश्य वस्तु नहीं हैं; तत्त्व-जिज्ञासा ही जीवका मुख्य प्राप्य है।

अपवर्ग-स्वरूपके बारेमें श्रीमद्भागवतके ५।१९।१९ श्लोकमें कहा गया है—"भारतवर्ष में जिस वर्णका जैसा विधान या मोक्ष प्रकार है, अर्थात् संन्यास-वानप्रस्थादि आश्रम विहित हैं, उसका व्यतिक्रम न कर अपने-अपने वर्ण-धर्मके अर्पणादि द्वारा नरमात्र ही अपवर्ग प्राप्त कर सकता है। जिस समय महापुरुष विष्णुके जन या भगवत्भक्तका प्रकृष्टसङ्ग प्राप्त होता है, उस समय देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि विभिन्न योनियोंमें जन्मग्रहणके कारणरूप जीवकी अज्ञानग्रन्थि खुल जाती है और भगवान वासुदेवमें अहैतुक भक्तियोगरूप अपवर्ग की प्राप्ति होती है। भगवान वासुदेव परम-कल्याण सौन्दर्यादि गुणवान हैं, सर्वभूतचित्ताकर्षक हैं और जीवात्माके सेव्य-वस्तु होनेके कारण प्राकृत रागादि-रहित हैं। वाक्य द्वारा उनका माहात्म्य जाना नहीं जा सकता, महाप्रलयकालमें भी उनके नाम-रूप-गुण-लीलादिका अस्तित्व सदैव है और प्राकृत तत्त्व की तरह उनका लय नहीं है। वे परमात्मा हैं और भजनीय-वस्तुओंमें सर्वोत्कृष्ट हैं। जो व्यक्ति भक्तके विशेष संगप्रभावसे नानागति प्राप्तिरूप बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करते हैं, वे भगवान् वासुदेवमें अहैतुकभक्तियोगलक्षणयुक्त अपवर्ग प्राप्त करते हैं।" इस श्लोकानुसार अपवर्ग भक्तिस्वरूप है। स्कन्द-पुराणके रेवाखण्डमें—"हे जनार्दन, तुम्हारे प्रति निश्चला सेवा ही 'मुक्ति' है; क्योंकि हे विष्णो! हे हरे! मुक्तगण ही केवल तुम्हारे भक्त हैं।"

इससे यही जाना जाता है कि धर्मानुष्ठान द्वारा कर्मफल-प्रसिद्ध स्वर्गादि-प्राप्ति जीवनका वास्तविक फल नहीं है, केवल एक मात्र तत्त्व-जिज्ञासा ही वास्तविक फल है। उसी तत्त्वज्ञानको जिस भक्तिका गौण फल कहा गया है, वही भक्ति ही प्रकृत परम फल है। तत्त्व किसे कहते हैं? श्रीमद् भागवतके १।२।११ श्लोकमें—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

तत्त्वविद् व्यक्तियोंमें कोई उस अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तुको 'ब्रह्म', कोई 'परमात्मा' और कोई 'भगवान् कहते हैं। 'अद्वय' शब्द द्वारा उस तत्त्वका अखण्डित भाव निर्देश कर ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—प्रत्येकको दूसरेके साथ एक ही वस्तु कहने जाकर उनका शक्तित्व स्वीकार किया गया है। उन त्रिविध आविर्भावोंमें 'ब्रह्म' शब्द द्वारा शक्तिवर्गलक्षण-शक्तिधर्मातिरिक्त केवल-ज्ञानको कहा गया है। 'परमात्मा' शब्दद्वारा अन्तर्यामित्वमय माया-शक्तिप्रचुर अप्राकृत सम्बित्-शक्तिके अंशविशेष को कहा गया है। 'भगवान्' शब्दद्वारा परिपूर्ण शक्तिविशिष्ट प्रकाश भेदयुक्त पूर्ण-वस्तु को कहा गया है। ये सभी बातें 'भगवत्', 'परमात्म' और 'कृष्ण'—इन तीन सन्दर्भोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं।

भगवत्-सन्दर्भमें कहा गया है —"एवञ्चानन्दमात्रं विशेष्यं समस्ताः शक्तयो विशेषणानि विशिष्टो भगवानित्यायातम्। तथा चैवं वैशिष्ट्ये प्राप्ते पूर्णाविर्भावत्वेनाखण्डतत्त्वरूपोऽसौ भगवान्। ब्रह्म तु स्फुटमप्रकटितवैशिष्ट्याकारत्वेन तस्यैवासम्यगाविर्भाव इत्यागतम्।"

*** "इदं ब्रह्माख्य केवल-विशेष्याविर्भावनिष्ठम्। ऐश्वर्यस्य समग्रस्येत्यादिकं केवल-विशेषणनिष्ठम्। विभुं सर्वगतमित्यादिकन्तु विशिष्टनिष्ठम्।"

'ब्रह्म' और 'ब्रह्मेतर' इन दोनों शब्दोंमें यही पार्थक्य है कि 'ब्रह्म' बृहत् है और 'ब्रह्मेतर' अणु और सगुण है। 'ब्रह्म' पालक है, 'ब्रह्मेतर' पाल्य है। ब्रह्मेतरको कार्यकी कारणशक्ति कहनेसे ब्रह्मवस्तु निष्क्रिय होनेके कारण शक्तिजात नहीं है और शक्ति भी नहीं है—ऐसा निर्देश होता है। अतएव ब्रह्मेतर वस्तुको शक्ति कहनेसे ब्रह्मको शक्तिमान नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मेतर और ब्रह्मको यदि एक ही वस्तु कहा जाय, तो शक्तिमान् और शक्तिकी विचित्रता नहीं रहती और ऐसे शब्दों द्वारा उद्देश्यकी सिद्धि नहीं होती। 'ब्रह्म' केवल वस्तु है; वह यदि शक्तिमात्रमें ही पर्यवसित हो, तो 'बृहत्' शब्दका परिमाणगत पार्थक्यकी सार्थकता नहीं होती। शक्ति तारतम्यसे जगतमें अणुत्व और बृहत्व सिद्ध है। ब्रह्म यदि ऐसे ही हों, तो शुद्धब्रह्मवादके बदलेमें मायावाद ही वेदका स्थाप्य हो पड़ता है। अतएव विवर्त्तवादी लोग ब्रह्मको निःशक्तिक कहनेके लिए बाध्य हैं। मायावादियोंके मतानुसार स्वगत-स्वजातीय-विजातीय भेद—शक्तिवैचित्र्य सभी ही मायाकी क्रियाएँ हैं; इसलिए शुद्धब्रह्मवादी ऐसा नहीं कहते। मायावादी लोगोंके लिए विवर्त्तवाद ही एकमात्र आधार है। अतएव विवर्त्तवादियोंको भागवत लोग मायावादी कहते हैं। केवल-ज्ञानमें केवल-चित्सत्ता या केवलानन्दका परिचय नहीं है। वह केवल-सम्बित्का अधिष्ठान मात्र है।

परमात्म-वस्तुमें केवल-ज्ञानके साथ जिस अस्तित्वकी उपलब्धि होती है, वह मिश्र है। मायाशक्ति-परिणत जगतमें व्यापक रूपसे अन्तर्यामित्वकी दृष्टिसे परमात्माका अधिष्ठान है। प्राकृत जगतमें अवस्थित मायावादी लोग परमात्मामें मायाशक्तिके द्वारा निर्मित ईश्वर या भूमाका दर्शन करते हैं। वे यह भी सोचते हैं कि उनका अस्तित्व सूक्ष्म रूपसे अवस्थित है। अनन्त विस्तृति अक्षजज्ञानका समष्टिमात्र है। इसके अन्तर्गत सूक्ष्मतामें जो वस्तु-प्रतीति प्रतिष्ठित है और स्वतः कर्त्तृत्व धर्मविशिष्ट है, वही परमात्मा है और असंख्य व्यष्टि-आत्मा की समग्रता है। परमात्मामें विशेषण-निष्ठा प्रबल है, निःशक्तिक ब्रह्ममें विशेष्य-निष्ठा प्रबल है और भगवान्‌में विशिष्ट-निष्ठा वर्त्तमान है। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं। वे केवल मायाशक्ति के कारणमात्र ही नहीं हैं बल्कि निर्माया-शक्ति के भी कारण हैं। वे अणुचित् जीव शक्तिके कारण हैं और अचित् शक्तिके भी कारण हैं। वे सम्यक्-प्रकाश वस्तु हैं और ब्रह्म असम्यक् आविर्भावमात्र है। भगवान् पूर्णचिन्मय प्रकाश वस्तु हैं, परमात्मा मायाशक्ति-प्रचुर चित् शक्ति के अंशविशिष्ट ज्ञान हैं।

— त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

रे मन ! अजहूँ क्यों न सम्हारै

रे मन ! अजहूँ क्यों न सम्हारै।
माया-मदमें भयौ मत्त, कत जनम वादिहीं हारै॥
तू तौ विषया-रंग रँग्यौ ह्वै, बिन धोए क्यौ छूटै।
लाख जतन करि देखौ, तैसैं बार-बार विष घूँटै॥
रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई।
फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई॥
सेत, हरौ रातौ अरु पियरौ तंग लेत है धोई।
कारौ अपनौ रंग न छाँडै, अनरँग कबहुँ न होई॥
कुबिजा भई स्याम-रँग-राती, तातैं शोभा पाई।
ताहि सबै कंचन सम तौलैं, अरु श्री-निकट समाई॥
नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ।
सूरदास आपुहि समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ॥

परतत्त्व-विचार

(गतांकसे आगे)

परतत्त्वकी तृतीय प्रतीति—भगवान्

सर्वशक्तिमान् तत्त्ववस्तुको 'भगवान्' कह कर सम्बोधन किया जाता है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतका पूर्वकथित श्लोक आलोचनीय है। उसमें तत्त्ववस्तुको चरममें 'भगवान्' कह कर निर्देश किया गया है। अर्थात् ब्रह्म निःशक्तिक है, परमात्मा मायाशक्तिक हैं और भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। भगवानकी इस सर्वशक्तिमत्ताको लेकर भगवत्ताका तारतम्य वैष्णव दार्शनिकोंने विचार किया है। सर्वशक्तिमत्तत्त्व इन्द्रियज-ज्ञान से अतीत है। अतएव उसे शास्त्रोंमें अधोक्षज-तत्त्व कहा गया है। अतिमर्त्य महापुरुष जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीने सर्वशक्तिमान्-तत्त्वके सम्बन्धमें एक एक अभिनव विचार दिखलाया है। उनका कहना है कि 'अधोक्षज' विचार पूर्णता और उन्नतिको प्राप्त करने पर 'अप्राकृत' विचार हो जाता है। अतएव अधोक्षज भगवानको उपासना द्वारा चित्तवृत्ति उन्नत होने पर और माया-मोहादि अविद्या-चेष्टासे मुक्ति प्राप्त करने पर 'अप्राकृत' भगवत्तत्त्वकी उपलब्धि की जा सकती है। भारतवर्षमें बहुतसे वैष्णव-सम्प्रदाय हैं। वे सभी ही प्रायः अधोक्षज-तत्त्वकी ही सेवा करते हैं। क्योंकि अधोक्षज-तत्त्व ही सर्वशक्तिमान् हैं। बहुतसे वैष्णव-सम्प्रदायोंमें 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—श्रीमद्भागवतके इस वचनकी सार्थकताकी उपलब्धि नहीं है। साधारण वैष्णव लोग अधोक्षज-तत्त्वकी गौरवमय चिन्ताधाराके प्रति आकृष्ट हैं। वे लोग भगवानको विशेष्य और जीव तथा जगत को भगवानका विशेषण मानते हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है मानो विश्व ही ईश्वरका शरीर है। किन्तु श्रीमद्भागवतकी प्रधानता जिन-जिन वैष्णव सम्प्रदायोंने स्वीकार की हैं, वे लोग 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इसी वचन का समादर करते हैं। 'स्वयम्' शब्दका तात्पर्य अधिकांश व्यक्ति ही समझ नहीं सके। शिव-ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवताओंकी ईश्वर-उपासनामें तारतम्य रहने पर भी अधोक्षज-तत्त्व-सेवा ही अधिक परिमाणमें परिस्फुट है। देवताओंकी कृष्णोपासना शास्त्रोंमें देखी जाती है। तथापि कृष्णकी पूर्ण अभिव्यक्ति उन्हें भी उपलब्ध नहीं है। स्वयं' शब्द द्वारा अवतारी पुरुष को कहा गया है। बहु-शक्तिमान् एवं सर्वशक्तिमान् आदि सभी भगवत्-तत्त्व ही कृष्णसे आविर्भूत हुए हैं। अतएव श्रीकृष्ण ही अवतारी पुरुष हैं। देवताओंसे भी श्रेष्ठ जीवोंकी आराधना द्वारा श्रीकृष्ण षड्भुज, चतुर्भुज एवं द्विभुज अथवा भुजरहित या पादरहित अपाणि-पाद

रूपसे उदित हुए हैं। इस प्रसङ्गमें सभी अवतारोंके भी अवतारी श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा सर्वप्रधान आलोच्य विषय है।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है—हो सकता है कि सर्वशक्तिमत्ताकी सीमाको कोई निर्धारित कर सके। किन्तु अचिन्त्य शक्तिमत्ताकी सीमा कोई निर्द्धारित नहीं कर सकता। अतएव 'अचिन्त्य शक्तिमान् भगवान्' कहनेसे एकमात्र श्रीकृष्ण को ही समझना चाहिए। 'सर्वशक्ति' शब्द द्वारा सभी शक्ति या अनन्त शक्तिको जानना चाहिए। अतिमर्त्य महापुरुषोंकी अतिमर्त्य अधोक्षज चिन्ता द्वारा इसका निर्देश पाया जा सकता है। किन्तु अचिन्त्य शक्ति कहनेसे जिस उन्नततम सर्वश्रेष्ठ अप्राकृत विचारको लक्ष्य किया जाता है, उसी विचार द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र 'अचिन्त्य शक्तिमान् भगवान्' कहे जाते हैं। यह विचार पहले कभी भी या कहीं भी नहीं दिखलाया गया है। जो स्वयं अचिन्त्यशक्तिमान् हैं, उन्होंने ही इस अचिन्त्य शक्तिका माहात्म्य अपने अत्यन्त प्रियजनोंको बतलाया है और उनके सर्वोत्तम सेवकोंके हृदयमें समर्पण किया है। इसलिए उन अचिन्त्य शक्तिमत्तत्त्व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका सर्वोत्तम महापुरुषों ने 'अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ' आदि वाक्यों द्वारा स्तव किया है। अचिन्त्य पुरुष ही अचिन्त्य शक्तिका सन्धान प्रदान करनेमें समर्थ हैं। असीम तत्त्व ही असीमकी धारणा करानेमें समर्थ है। चिन्त्य पदार्थ चिन्त्य विचारको ही प्रदर्शन कर सकता है, अचिन्त्यकी धारणा उसके निकट अलीक या मिथ्या जैसे मालूम होती है। अतएव श्रीमन्महाप्रभुके वेदान्त-विचारमें अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु अचिन्त्य और असीम तत्त्व होनेके कारण उनके द्वारा ही अचिन्त्य तत्त्वका प्रतिपादन हुआ है। शास्त्रोंने ही उन्हें 'वाक्य-मनसे अगोचर' कहा गया है। अतएव अचिन्त्य-तत्त्वको कौन प्रकाश कर सकता है? इस विषयमें शास्त्रोंने अपना असामर्थ्य प्रकट किया है। शास्त्रोंमें कहा गया है—"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह", "अवाङ्मनसोगोचरः" आदि-आदि। और भी कहा गया है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।" वेदान्त-दर्शनमें कहा गया है—"तर्काप्रतिष्ठानात्"। ये सभी वाक्य सर्वशक्तिमान् या बहु-शक्तिमान् भगवान्के लिए नहीं, बल्कि अचिन्त्य शक्तिमान् भगवान्के लिए कहे गए हैं। तत्त्ववस्तुको अवाङ्मनसोगोचरः कहनेसे अप्राकृत अचिन्त्य तत्त्वको ही समझना चाहिए। तार्किकगण उसे स्व-विरोध वाक्य कहते हैं; परन्तु अचिन्त्य तत्त्वके लिए ऐसा दोष सम्भव नहीं है। भाषा-मल द्वारा अनुभवसिद्ध वस्तु दूषित नहीं होता। वाक्य द्वारा वस्तुका निर्देश मात्र होता है। साक्षात्कार केवल अनुभवसिद्ध है। 'अवाङ्मनसोगोचरः' भी एक वाक्य है। इस वाक्य द्वारा जिस वस्तुको निर्देश किया गया है, वह भी उक्त वाक्य द्वारा ही व्यक्त हुआ। जो बात व्यक्त हुआ, वह उसका

आंशिक दिक्-दर्शन मात्र है, पूर्णानुभूति नहीं। इसके द्वारा 'नेति-नेति' वादकी सहानुभूति नहीं होती। क्योंकि एक विचार पार्थिव वस्तु के प्रति लक्ष्य रखनेके कारण उसका निषेध किया जा रहा है। अर्थात् 'इति' के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि कर उस इति-वस्तुको अस्वीकार करनेके लिए कहा गया है। "अचिन्त्याः खलु ये भावाः नास्तान् तर्केण योजयेत्"—इस वाक्य द्वारा मानसिक चिन्ताप्रसूत वाक्योंको अस्वीकार करनेके लिए नहीं कहा गया है। अर्थात् मानसिक अनुभूति उसके द्वारा पराभूत होकर अप्राकृत अनुभूतिके प्रति साधकको अग्रसर कराती है। अतएव दोनों एक नहीं हैं।

ऐतिहासिक व्यक्ति अचिन्त्यशक्तिमत्ता समझनेमें असमर्थ हैं। काव्यरसके रसिक या प्राकृत ऐतिहासिकोंके विचारके अनुसार 'अचिन्त्य' नामक कोई वस्तु नहीं है। अतएव वे लोग शास्त्रीय विचारमें प्रवेश करनेसे पराङ्मुख हैं। कृष्णलीलामें श्रीकृष्णचन्द्रकी जो अचिन्त्यशक्तिमत्ता प्रकाशित हुई है, उसे साधारण दार्शनिक लोग समझनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। समझनेमें असमर्थ होकर भी उनकी अयोग्यताको छिपानेके लिये वे लोग श्रीकृष्णलीलाके प्रति कटाक्ष किया करते हैं। अचिन्त्य वस्तुके प्रति चिन्त्य धारणा लेकर विचार करने पर ऐसी ही विफलता प्राप्त करनी पड़ेगी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकामें एक ही दिनमें, एक ही समय, एक ही मुहूर्त्तमें पृथक्-पृथक् घरोंमें अवस्थित सोलह हजार महिषियोंसे विवाह किया था। यह सर्वशक्तिमत्ताका प्रभाव नहीं है, परन्तु अचिन्त्य शक्तिमत्ताका प्रभाव है। रासलीलामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक रूपमें ही बहुतसे असंख्य रूपोंका प्रकाश हुआ था। यह भी अचिन्त्यशक्तिमत्ताका ही प्रभाव है। साधारण दार्शनिक इसे नहीं समझने पर भी अचिन्त्य शक्तिमान् श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे उनके सर्वोत्तम सेवक लोग तथा श्रील प्रभुपादजीने इस विषय को हृदयङ्गम कर हमें शिक्षा देनेमें सामर्थ्यवान हुए हैं।

हमारे गोस्वामियोंने श्रीकृष्णकी प्रत्येक लीलाको ही नित्य कहकर वर्णना की है। नित्य कहनेसे वह सर्वदा वर्त्तमान या नित्य वर्त्तमान है, यही जानना चाहिए। नित्य शब्द की प्रतीतिको लेकर भी विभिन्न शास्त्रोंमें विभिन्न दार्शनिकोंने विभिन्न प्रकारसे विचार किया है। उनमें व्यवहारिक नित्यत्व, पारमार्थिक नित्यत्व, आपेक्षिक नित्यत्व, प्रात्यहिक या दैनन्दिन नित्यत्व, अवश्य-कर्त्तव्यरूप नित्यत्व, कालगत नित्यत्व एवं मायिक नित्यत्व आदि बहुत प्रकारके नित्यत्वकी बात सुननेमें आती है। परन्तु गोस्वामियोंने जिस नित्यत्वकी बात आलोचना की है, उस नित्यत्वमें किसी प्रकारसे भूत-भविष्यादि कालवैषम्यका प्रवेश नहीं है। अतएव नित्य कहनेसे नित्य वर्त्तमान है, यही समझना चाहिए। श्रील कृष्णदास

कविराज गोस्वामीने कहा है—"अद्यापिह सेइ लीला करे गौरराय । केान-कोन भाग्यवान देखबारे पाय ।" यहो लीलाके नित्यत्वका उदाहरण है। नित्यवस्तुके लिये कहीं-कहीं कैवल्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् 'केवल' शब्दके व्युत्पत्ति-धर्म द्वारा हो 'कैवल्य' शब्द हुआ है । ब्रह्मसूत्र या वेदान्तदर्शनमें 'कैवल्य' शब्दका 'नित्य' शब्दके पर्यायवाची शब्दरूपमें प्रयोग किया गया है। वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रमें लिखा है—'लोकवत्तु लीला-कैवल्यम्'। लीला कैवल्यस्वरूप अर्थात् नित्य है । 'कैवल्य' शब्द का दूसरे प्रकारसे अर्थ करनेसे वह अत्यन्त विपरीत हो पड़ता है। लीला लौकिक-क्रिया को तरह प्रतीत होने पर भी वह नित्य और भगवानके साथ केवलता-प्राप्त या एकत्व-प्राप्त है। अर्थात् श्रीकृष्ण जिस प्रकार नित्य सत्य हैं, उसी प्रकार लौकिक लीला भी नित्य है—उस नित्यलीलासे लौकिक क्षेत्रमें प्रकाशित होनेके कारण वैसी प्रतीत होती है। अलौकिक की छाया हो लौकिक है—सादृश्ययुक्त है। सृष्टिके प्रारम्भमें वस्तुका कैवल्य या एकत्व-लक्षण, जिसका किसी-किसी दार्शनिकने विचार किया है, वह कैवल्य या एकत्व बहुत्व-का ही प्रतीक है । जिस प्रकार राजा कहनेसे उसके सैन्य-सामन्त मन्त्रीवर्ग और बहुसंख्यक प्रजा-समन्वित कोई विशेष व्यक्तिको लक्ष्य किया जाता है, उसी प्रकार 'परतत्त्व एक' कहनेसे उसमें बहुत्वकी स्थितिको समझना चाहिए। पाश्चात्य दार्शनिक लोग कहते हैं—'Diversity in unity' । गणितशास्त्रोंमें जिस एककी कल्पना है, वह बहुत्वका सहायक मात्र है। क्योंकि दृष्टादृष्ट जगतमें 'एक' नामक कोई वस्तुकी स्थिति नहीं है। वह एक काल्प-निक संख्या मात्र है । इस काल्पनिक 'एक' संख्या द्वारा बहुत्व प्रमाणित और स्थापित होता है । उपनिषदोंका कहना है—'एकोऽहं बहु स्याम्' । मैं एक वस्तु ही बहुत हुआ हूँ।

एक के आड़में बहुत्व ही अचिन्त्य-शक्ति-मत्ताका प्रभाव है। अतएव जीवनिचय नित्य और सनातन होकर भी परब्रह्ममें सदा अव-स्थित है। जीव नित्य होनेके कारण ही परब्रह्म में अवस्थित हो सकता है। अनित्य जीव ब्रह्ममें अवस्थित नहीं हो सकता या ब्रह्मत्व प्राप्त नहीं हो सकता। जीव भगवानका अंश है—अति क्षुद्रादपि क्षुद्र अंश है । 'भगवानका अंश' कहनेसे 'वस्तुका अंश' नहीं, बल्कि वस्तुशक्ति का अंश है। वस्तुका अंश कहनेसे उसे वस्तुके समान अधिकार देना होता है। वस्तुशक्तिका अंश वस्तुके साथ एक नहीं है। पूर्ण वस्तुका अंश भी पूर्ण ही है। जीव समूह उस श्रेणीका अंश नहीं है। जीवमात्र ही शक्तितत्त्व है। शक्ति शक्तिमानमें अवस्थित रहती है। कोई भी शक्ति शक्तिमानके बिना स्वतन्त्र रूपसे अवस्थान नहीं कर सकती। 'शक्ति-शक्तिमतो-रभेदः'—यह दार्शनिक वाक्य ही इसका प्रमाण है। शक्ति शक्तिमानमें अवस्थित रहने पर भी शक्ति-शक्तिमानका वास्तव भेद स्वतः सिद्ध है। इनकी पृथक् अवस्थिति न होनेके कारण शक्ति और शक्तिमान् दोनों अभेद हैं। जीव कदापि ब्रह्म नहीं हो सकता और मनुष्य कदापि भगवान नहीं हो सकता—यह अटल सिद्धान्त है।

श्रीकृष्णका गोचारण

तरणिजा हरिसद्गुणधारिणी
प्रणतभक्त मनःसुखकारिणी ।
विविधरत्नमनोहरहारिणी
विजयते भवसागरतारिणी ॥

पद्मपुराणके वचनसे जाना जाता है कि श्रीकृष्णने गौचारणका आरम्भ कार्त्तिक शुक्ला अष्टमीसे किया था—

"तद्दिना वासुदेवोऽभूद गोपः पूर्वन्तु वत्सपः" ।

अर्थात् पहले श्रीकृष्ण बछड़ोंको चराते थे और इस दिनसे गौ चराने जाने लगे । श्रीमद्-भागवतमें वर्णित है—

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
-र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥

(भा० १०।१५।१)

कुमार-अवस्थामें श्रीरामकृष्ण बछड़े चराते थे । अब तरुण अवस्था (पौगण्ड अवस्था) प्राप्त कर अपने सम अवस्थावाले सखाओं के साथ गौ-चारण आरम्भ करने लगे । गौ-चारण करते-करते अपने चरण-चिन्होंसे समग्र व्रज-भूमिको पवित्र करने लगे । भगवानके चरण-संक्रमणसे ही इस वृन्दावनकी इतनी महिमा है कि इस भूतलपर वृन्दावनके होनेसे ही यह भूतल धन्य है । श्रीमद्भागवतमें वर्णित है—

"वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्त्ति
यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।"

(भा, १०।२१।१०)

एक सखी दूसरी सखीसे कह रही है—हे सखि ! इस यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके श्री चरण-चालनसे महिमा प्राप्त श्रीवृन्दावन इस भारतभूमिकी महिमाको बढ़ा रहा है; अर्थात् जिस भूमिमें वृन्दावन स्थित है, वह भूमि अति धन्या है । यहाँ पर देवकीसुतका का अर्थ यशोदासुत है । श्री गौड़ीय वैष्णवोंने इस बातको "द्वे नाम्नी नन्दभार्यायाः यशोदादेवकी च"—हरिवंश पुराणके इस वचन द्वारा प्रमाणित किया है । एक दिन श्रीकृष्णने अपने मित्र बालकों के साथ विचार किया कि अब तक हम लोग बछड़े चराते थे; अब गायों को चरायें, गायों को चराने का कल शुभ दिन है । अतः अपनी-अपनी गायोंको लेकर सभी नन्दभवनमें आना और वहाँसे साथ-साथ चलेंगे । दूसरे दिन प्रातःकाल पूर्व निश्चयके अनुसार सब सखा लोग नन्दरानीके घर आये—

तावद् गोभट-भद्रसेन-सुबल-श्रीस्तोककृष्णार्जुन
श्रीदामोज्ज्वलदाम-किङ्किणी-सुदामाद्याः सखायो गृहात् ।

आगत्य त्वरितं मुदाभिमिलिताः श्रीसीरिणा प्राङ्गणे
कृष्णोत्तिष्ठ सुकार्यसाधनकृते सर्वे वयं सङ्गताः ॥

श्रीकृष्ण अभी लेटे हुए हैं कि गोभट, भद्रसेन, सुबल, स्तोककृष्ण, अर्जुन, श्रीदाम, उज्ज्वल, किङ्किणी, सुदामादि सखा बलदेवजी के साथ व्रजरानीके आंगन में पहुँचे और कहने लगे—हे कृष्ण! उठो! हम सब गोचारण करनेके लिए आए हुए हैं।

श्रीकृष्ण शय्या पर लेटे हुए हैं कि—

पर्यङ्के न्यस्य हस्तं तदुपरिनिहितस्वाङ्गभारा तथाऽसौ
कृष्णस्याङ्गं स्पृशन्ती करकमलेनेषदाभुग्नमध्या।
सिञ्चन्त्यानन्दबाष्पैः स्नुतकुचपयसांधारया चास्यतल्पं
वत्सोत्तिष्ठाशु निद्रां त्यज मुखकमलं दर्शयेत्याह माता ॥

श्रीकृष्णके समीप शय्यापर यशोदाजी लेटी हुई हैं। शय्यापर एक हाथ रखकर अपने शरीर का भार उस हाथपर रखते हुए श्रीकृष्ण की तरफ कुछ झुककर दूसरे हाथसे श्रीकृष्णका स्पर्श करते हुए कहने लगीं—हे पुत्र! निद्राको छोड़ कर शीघ्र उठ बैठो और मुझे अपना मुखकमल दिखलाओ। श्रीकृष्ण उठकर बैठे; माताने उन्हें स्नान कराया। सब सखाओंने कृष्णके चारों ओर बैठना प्रारम्भ किया।

श्रीदामा सुबलो वामे पुरोऽस्य मधुमङ्गलः।
दक्षिणे श्रीबलश्चान्ये परितः समुपाविशत् ॥

श्रीदामा-सुबल श्रीकृष्णके बाँयें ओर और दाहिने ओर श्रीबलदेव, आगेकी तरफ मधुमङ्गल और सब सखा लोग सब ओर बैठे। नन्दरानीने परोसना प्रारम्भ किया—

चर्वन्ति चर्व्याणि मृदूनि केचित्
लेह्यानि चान्ये चटुलं लिहन्ति।
पिबन्ति पेयानि परे प्रहृष्टा-
स्चोष्यन्ति चोष्याण्यपरे वितृप्ताः ॥

कोई बालक भक्ष्य वस्तुका भक्षण कर रहे हैं, कोई आम आदि फल और चूसने योग्य द्रव्योंको चूसते हैं, कोई माखन आदि चाटने योग्य द्रव्योंको चाट रहे हैं; कोई दूध, रस, शर्बत आदि पदार्थ पी रहे हैं; ऐसे ढङ्गसे सब बालकोंने कलेवा किया। इसके पश्चात् सब बालकोंने अपना अपना शृंगार किया—

शृङ्गं वामोदरपरिसरे तूर्यवाद्यं तथा च
दक्षे तस्मिन्निहितमुरलीं रत्नभूषां दधानः।
वामेनासौ सरललगुडीं पाणिना पीतवर्णां
लीलाम्भोजं कमलनयनश्चालयत् दक्षिणेन ॥

श्यामसुन्दर कमलनयन श्रीकृष्णने बाँईं ओर फेंटमें बजानेका सींगा, उसी फेंटमें दाहिनी ओर मुरलीको रखा। रत्नोंके विविध आभूषण धारण कर बायें हाथमें लकुट और दाहिने हाथ में कमलको लेकर गौ चरानेके लिए तैयार हुए। गायोंको बुलवाकर बड़ी प्रीतिसे उनकी पूजा हुई और प्रार्थना, स्वस्तिवाचन आदि कार्य सम्पन्न हुए।

या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहन्ति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥

अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदयं सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥
गावो रक्षतु मे पुण्यं गावो रक्षतु मे यशः ।
नमोऽस्तु कामधेनुभ्यो या पुनन्ति जगत्त्रयम् ॥
नमस्ते कपिले देवि ! सर्वपापप्रणाशिनी ।
संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि ॥

जो कि इन्द्रादि लोकपालोंकी सम्पत्ति गौरूपमें स्थित है और हमारे यज्ञादि कार्यके लिये घृत प्रदान करती है, वह गौ मेरे पापोंको नष्ट करें। मेरे आगे भी गायें हों और पीछे भी गायें हों अर्थात् मेरी इतनी अधिक गायें हों कि मैं उनके बीचमें रहा करूँ। गाय मेरे पुण्यकी रक्षा करें (पुण्य को बढ़ावें), मेरे यशकी भी रक्षा करें; सब कामनाओंको पूरण करनेवालीं और तीनों लोकोंको पवित्र करनेवालीं गायों को हम नमस्कार करते हैं। सब पापोंका नाश करनेवाली हे कपिले गौ ! संसार समुद्रमें बूड़े हुए मेरा त्राण करो। ऐसी प्रार्थना करनेके पश्चात् नन्दरानी यशोदाजी श्रीकृष्णसे कहने लगीं—

शतशः सन्ति मे गोपा निपुणाः पालने गवाम् ।
पालयामि स्वयमिति वत्स ! कस्ते दुराग्रहः ॥

हे पुत्र ! गाय चरानेके लिए गौ - सेवामें कुशल सैकड़ों मेरे लोग हैं। फिर तू यह हठ क्यों कर रहा है कि मैं ही गौओंको चराने जाऊँगा। और यह भी है कि—

बालोऽसि मृदुलस्तत्र विमुक्तच्छत्रपादुकः ।
दिनं भ्रमसि कान्तारे जीवेतां पितरौ कथम् ॥

हे कृष्ण ! अभी तू बालक है; तेरा शरीर बहुत ही कोमल है। तथापि छाता न लेकर, पाँवोंमें पादुका न पहनकर जाओगे; दिनभर खुले सिर, नंगे पाँवोंसे वनमें घूमने की चिन्तासे हम तुम्हारे माता-पिता कैसे जीवित रह सकते हैं ?

क्रियमाणग्राहो स्वस्य छत्रोपानहविधारणे ।
वात्सल्यव्याकुलौ वीक्ष्य पितरौ प्राह केशवः ॥

माता-पिताके आग्रह करने पर भी छत्र और पादुका कृष्णने धारण न किये। इसलिए वात्सल्य भावसे अत्यन्त व्याकुल चित्तवाले पिता और जननी को देखकर वे कहने लगे—

गवां सेवा परो धर्मो न मातश्छत्रपादुके ।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्मः सनातनः ॥

हे जननि ! गौकी सेवा हमारा धर्म है और इस धर्ममें छत्र-उपानह आदिका धारण करना न चाहिये; क्योंकि गायोंके भी तो ये वस्तुएँ नहीं हैं। अतः जिस प्रकारसे गायें हों, उसी प्रकार उनके सेवकोंको भी होना चाहिए। यही सनातन धर्म का यथार्थ स्वरूप है।

धर्मादायुर्यशोवृद्धि धर्मो रक्षति रक्षितः ।
स कथं त्यज्यते मातरभिश्चेद् धर्मो हि रक्षितः ॥

अपने स्वधर्मका पालन करनेसे आयु और यशकी वृद्धि होती है और धर्मकी रक्षा करने पर धर्म हमारी रक्षा करता है। उसे माता-पिता कैसे त्याग कर सकते हैं जब धर्मकी रक्षा हो। अतः आप लोग कोई चिन्ता न करें।

गौका माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम् ।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

यस्याः शिरसि ब्रह्मास्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः ।
पृष्ठे नारायणस्तथौ श्रुतयश्चरणेषु च स्थिताः ॥
या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसु संस्थिताः ।
सर्वदेवमयो गावस्तुष्येत्तद् भक्तिदो हरिः ॥
संस्पृशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात्तां च प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
हरन्ति स्पर्शनात्पापं पयसा पोषयन्ति ताः ।
प्रापयन्ति दिवं दत्ताः पूज्याः गावः कथं न ताः ॥

गौका स्पर्श करनेसे पाप नष्ट होते हैं, सेवा करनेसे धनकी प्राप्ति होती है, गौ-दान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है, अतः गौके समान और कोई धन नहीं है। गौके मस्तकमें ब्रह्मा, कन्धेमें शिव, पृष्ठ भागमें नारायण, चरणोंमें चारों वेद और लोमोंमें तैंतीस करोड़ देवता स्थित हैं। अतः गौ सर्वदेव स्वरूप है। इसकी भक्ति करने से साक्षात् भगवान हरि प्रसन्न होते हैं।

गौके चरण छूकर, नमस्कार कर, गौकी प्रदक्षिणा करने पर सप्तद्वीपवती पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल मिलता है। स्पर्श करनेपर पाप नाश करती है, दूध देकर पालन करती है, गौदान करने पर स्वर्ग पहुँचाती है; अतः गौ सर्वथा पूज्य है। इस प्रकार गौ-माहात्म्य सुनकर माता-पिताने जानेकी आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया—

भू द्यौ भव्या भवतु भवतो रक्षिता श्रीनृसिंहः ।
शस्तःपन्था वनमपि शुभं भावुका दिग्विदिक् स्यात्॥

पृथ्वी और आकाश तुम्हारा कल्याण करें, श्रीनृसिंह भगवान रक्षक हों, मार्ग शुभकारी हो, वन और दिशायें भी प्रफुल्लित हों।

वत्स ! स्थावरजङ्गमेषु विचरन् दुष्टप्रचारे वने ।
हिंस्रान् वीक्ष्य पुरः पुराणपुरुषं नारायणं ध्यायसि॥

हे पुत्र ! दुष्ट जन्तुके संचारयुक्त वनमें भ्रमण करते हुए यदि कोई व्याघ्र आदि हिंसक जानवर मिलें, तो नारायणका स्मरण करना; क्योंकि "हरिस्मृतिः सर्वविपद् विमोक्षणम्"—श्रीहरिका स्मरण सब आपत्तियोंका नाश करने वाला है।

पश्चात् नन्दगृहिणी बलरामजी से कहने लगीं—

शृणु बल मम वाक्यं बालकानां बलीस्वम् ।
गिरिजलवनमध्ये रक्ष बालं मदीयम् ॥
इति बलकरमध्ये कृष्णपाणिं निधाय ।
सपदि गलितधारा नन्दजाया मुमोद ॥

हे बलराम ! मेरी बात सुनो। तुम बालकों में बड़े तथा बलवान हो। अतः पर्वत-जल-वन आदिमें मेरे बालककी रक्षा करना। यह कह कर नन्दरानी श्रीकृष्णके हस्तकमलको बलदेव के हाथमें पकड़ाकर प्रसन्न होती है। पश्चात्

श्रीकृष्ण गोसमुदायको आगे कर बाल ग्वालोंके साथ वनमें पधारे—

वंशीविषाणदलयष्टिधरैर्वयस्यैः
संवेष्टितः सदृशहासविलासवेषैः ।
गच्छन् वनाय भवनाद् वनजेक्षणो यं
मुष्णन्मनो मृगदृशामथ निर्जगाम ॥

वंशी, बजानेका सींगा, लकुट आदि लेकर समान वेशभूषा और वयसवाले सखा ग्वाल-बालोंके साथ मृगनयनी गोपाङ्गनाओंके मनको हरण करते हुये कमलनयन श्यामसुन्दर नन्द-भवनसे वनके लिए चल पड़े। श्रीमद्भागवतमें भी वर्णित है—

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो
गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्-
विहर्त्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥
(भा. १०।१५।२)

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और बलराम अपनी लीलाका गान करनेवाले बालकोंके द्वारा वेष्टित होकर वेणु बजाते हुए, गौओंको आगे हाँकते हुए विहारकी इच्छासे पशुओंके हितकर तृण-जलछायायुक्त और विविध पुष्प शोभित वृन्दा-वनमें पधारे।

श्रीकृष्ण जब ग्वालबाल और बलदेवके साथ वनमें पहुँचे, तब गायें वनमें चरने लगीं और श्रीकृष्ण भी बालकोंके साथ अनेक प्रकारसे खेलने लगे। जब सांयकाल होने आया और व्रज लौटनेकी इच्छा हुई, तो उन्होंने दूरमें चरते हुए गौओं को बुलाया।

"पिशङ्गि-मणिकस्तनी-प्रणतशृङ्गि-पिंगेक्षणे
मृदङ्गमुखि-धूमले-शबले-हंसि-वंशीप्रिये ।"
इति स्वसुरभीकुलं मुहुरुदीर्ण 'ही ही' ध्वनि
विदूरतरमाह्वयन् हरति हन्त चित्तं हरिः ॥

हे पिशङ्गि, हे मणिकस्तनि इत्यादि नामों के सम्बोधनसे 'ही ही' शब्द कर दूर स्थित गौओंको बुलाया। उनके बुलानेका शब्द सुन कर सभी गौवें इकट्ठी होकर आ गईं। तब गायोंको आगे कर श्रीकृष्ण बालकोंके साथ वनसे व्रज लौटने लगे।

मन्दं क्वाणितवेणुरह्निशिथिले व्यावर्तयन् गोकुलं
बर्हापीड़कमुत्तमाङ्गरचितं गोधूलिधूम्रं अदधत् ।
म्लायन्त्या वनमालया परिगतः श्रान्तोऽपि रम्याकृतिः
गोपस्त्री नयनोत्सवो वितरतु श्रेयांसि वः केशवः ॥
नाभिदेशविनिवेशितवेणुर्घेनुपुच्छनिहितैकपाणिः ।
अन्यपाणिपरिमण्डितदण्डः पुण्डरीकनयनो व्रजमाप ॥

सांयकालके समय गौओंको लौटाते हुए, गायोंकी चरणधूलिसे धूसर होकर, मोर मुकुट पहिने हुये, नाभिदेशमें वेणुको रखे हुये एक हाथसे गौओंकी पूँछको पकड़े और दूसरे हाथ से लकुटी द्वारा सुशोभित होकर गोपाङ्गना-नाओंके नेत्रोंको आनन्द देनेके लिये कमलनयन श्रीकृष्ण व्रजको लौटे।

समीप आने पर देखा कि श्रीकृष्ण मन्द-मन्द वेणु बजा रहे हैं, माथे पर सुन्दर मोर

मुकुट सुशोभित है और सारे शरीरपर गोधूलि भर रही है। वनमाला कुम्हला गई है और अत्यन्त थके हुए होनेपर भी उनकी बहुत ही रम्याकृति है। गोप-स्त्रियोंके लिये नयनोत्सव स्वरूप ऐसे श्रीकृष्ण हमारा कल्याण करें।

रेणुर्नायं प्रसरति गवां घूमधारा कृशानो-
र्वेणुर्नासौ गहनकुहरे कीचको सखीति ॥

एक सखी कहने लगी—अरे यह तो गोरज उड़ रहा है और वंशीका शब्द सुनाई दे रहा है; अतः हमारे प्राणप्यारे श्रीश्यामसुन्दर आ रहे हैं। दूसरी सखी कहने लगी—यह गौ धूलि नहीं है, यह तो वनकी अग्निका धुँआ है; यह वंशी की ध्वनि नहीं है, यह तो पवनसे बजते हुए बाँसोंकी आवाज है। इस प्रकार गोपियाँ आपसमें तर्क कर रही हैं कि श्रीकृष्ण नन्दगोकुलमें पधारे।

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हं
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरुपगीतकीर्ति
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥
पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि।
तत् सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥

(भा० १०।१५।४२,४३)

गोरजसे धूसर केशपाशमें सुन्दर मोरका पंख और वनके सुन्दर पुष्पों द्वारा जिनका मस्तक सुशोभित हो रहा है, जिनके सुन्दर चितवनमें अत्यन्त रमणीय और मोहक मुस्कान खिल रहा है, जो वेणु बजा रहे हैं और पीछे से गोपबालक जिनका यशगान कर रहे हैं, ऐसे श्रीनन्दनन्दनके दर्शनकी इच्छासे व्रजसुन्दरियाँ सब ओरसे आ पहुँचीं। श्रीकृष्णके मुखकमलके मधुको अपने नेत्ररूप भ्रमरों द्वारा पान कर व्रजसुन्दरियाँ दिनभरके वियोग द्वारा उत्पन्न तापको दूर करने लगीं। श्रीकृष्ण भी उन कमलनयना गोपियोंका लज्जायुक्त हास्य और विनययुक्त कटाक्षरूप सत्कारको स्वीकार करते हुए नन्दगोकुलमें प्रवेश करने लगे। उस समय यशोदा माता श्रीकृष्णका आलिङ्गन कर, उनका मस्तक और मुख चुम्बन कर उन्हें आशीर्वाद देने लगीं और एकान्तमें उनकी आरती उतारी। भक्तोंने इस बातका ऐसा वर्णन किया है—

लटकती चलति युवति सुखदानी।
संझा समें सखामण्डल में सोभित तन गोरज लपटानी॥
मोरमुकुट गुंजा पियरोपट मुखमुरली बाजत मृदुबानी।
प्रभु गिरिधारी आये बनते लै आरति वारति नंदरानी॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण गोष्ठीमें जाकर स्वयं गौ-दोहन करने लगे—

अंगुष्ठाग्रमयन्त्रितांगुलिरसौपादार्धनिरुद्धभू-
रार्द्रीकृत्य पयोधराञ्च चतुरः सद्यः पयोबिन्दुभिः।
न्यग्जानुद्वयमध्यसंगतघटीवक्त्रान्तरालस्खलद्
धाराध्वानमनोहरं सखि! पयो गां दोग्धि दामोदरः॥

अँगूठेके अग्रभागसे अँगुलियोंको दबाकर आधे पाँवोंको टेककर बैठे हुए जलबिन्दुओंसे

गायोंके स्तनोंको धोकर श्रीकृष्ण गोदोहन करने लगे। उस समय दोनों जंघाओं के बीच स्थित दोहनीमें गिरते हुए दुग्धधाराका सुन्दर घर-घर शब्द होने लगा।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण स्नानादि करने लगे—

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः।
नीवीं बसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ॥
जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे॥

(भा० १०।१५।४५,४६)

श्रीकृष्ण और बलराम दोनों स्नान-मार्जनादि क्रिया द्वारा पथश्रम दूरकर मनोरम वस्त्र पहनकर और दिव्य माल्यगन्धादि द्वारा सुशोभित हुए। अनन्तर पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणी देवीने अपने पुत्रोंको इच्छानुरूप उत्तम भोजन कराया। माताओं द्वारा प्रेमपूर्वक प्रदान किये स्वादिष्ट भोजनको पाकर और उसके पश्चात् ताम्बूल, मुखवासादि ग्रहण कर दोनों भाई मनोरम शय्यामें शयन कर सुखपूर्वक सोने लगे। प्रातःकाल उठकर उसी क्रमसे लीलादि करने लगे।

—माननीय पं० गोपालचन्द्र चतुर्वेदी

प्रभु, राखि लेहु सरनाई

अधमकी जौ देखौ अधमाई।
सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तौ कछु कह्यौ न जाई॥
जब तैं जनम-मरन-अन्तर हरि, करत न अघहि अघाई।
अजहूँ लौं मन मगन काम सौं, बिरति नाहिं उपजाई॥
परम कुबुद्धि, अजान ज्ञान तैं, हिय जु बसति जड़ताई।
पाँचौ देखि प्रगट टाढ़े ठग, हटनि ठगौरी खाई॥
सुमृति-बेद मारग हरि-पुर को, तातैं लियो भुलाई।
कंटक-कर्म कामना-कानन कौ मग दियौ दिखाई॥
हौं कहा कहौं, सबै जानत हौ मेरी कुमति कन्हाई।
सूर पतित कौ नाहिं कहूँ गति, राखी लेहु सरनाई॥

वर्त्तमान युगमें भगवद्भक्ति उपादेय है

वर्त्तमान युगमें सुशिक्षित कहलानेवाला मानव स्वधर्मको, वास्तविक अपने स्वरूपको, अपने अंशी कर्त्ता-धर्त्ता-जगतस्रष्टा परम प्रभुके सम्बन्धको बिलकुल भूला हुआ है। उसका कर्त्तव्य-कर्म क्या है, उसकी रीति-नीति क्या है, उसका उद्देश्य क्या है, उसकी प्राचीन परम्परा क्या है, उसे किन संस्कारोंसे संस्कारित होनेकी आवश्यकता है, परमानन्दकी प्राप्ति कैसे हो सकती है, असार कपटाच्छादित संसारसे शाश्वत सुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?—ये सब विचार करनेका अब उसके पास समय नहीं है। वह नवीनताकी मादकतामें प्राचीनताके मधुर पीयूषको लुढ़का रहा है। भ्रान्तिपूर्ण होकर सत्य पर असत्यका परदा डालनेकी चेष्टा कर रहा है। मैं ईश्वर हूँ, सिद्ध हूँ, गुणवान हूँ, धनी हूँ, बली हूँ 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु' समर्थ हूँ—इस अभिमानमें चूर-चूर है।

पृथ्वी-आकाश-समुद्रके अन्तस्तलतक पहुँच कर अपूर्व आश्चर्यजनक शोध कर रहा है। सर्जनात्म विकासोंके साथ दुर्भावनाओंसे प्रेरित हो ध्वंसात्मक विकासोंकी ओर अधिक अग्रसर है। अपने ही द्वारा प्रतिक्षण मृत्युकी ओर जा रहा है, उसका आलिङ्गन कर रहा है।

अभी-अभी उसने संसारको विस्मयमें डाल कर विपुल धनराशिका व्यय कर भौतिक आविष्कारोंके बलपर चन्द्रलोककी भी यात्रा कर ली है। चन्द्रकी दैवी परम्पराओं, मान्यताओंको डिगाकर भौतिक रूप देनेका प्रयत्न किया है। इससे आधिभौतिक प्रतिष्ठा विसृङ्खलित हो गई है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या इससे मनुष्योंको देवत्वका सम्मान प्राप्त होगा, क्या संसार इस प्रयाससे अधिक लाभान्वित, साधन-सम्पन्न एवं सुखी होगा ? यहाँ यह माननेको सभी बाध्य हैं कि आविष्कारों द्वारा भौतिक वस्तुओंके निर्माणमें प्रगति, उन्नति अवश्य हुई है और होगी; पर इससे क्या मानवके हृदयमें बैठा हुआ आसुरी भाव पशुत्व भी नष्ट होगा ? क्या आत्मतत्वका पुनः आविर्भाव होकर सुख-शान्तिका सरल सुगम अबाध मार्ग भी प्रशस्त होगा ?

दुःख इसी बातका है कि अहोरात्र चोटीका पसीना एड़ी तक बहाकर मानव अपनी अभिलाषाओंके अनुकूल उपयोगी भौतिक साधनों को पूरा नहीं संचय कर पाया। यान्त्रिक आविष्कारोंसे उसे स्वास्थ्य, दीर्घजीवन और स्वतन्त्रता भी न मिली। अधिकाधिक वह परतन्त्रताका भागी बन गया है। उसका जीवन भी यथार्थ रूपसे सुरक्षित नहीं रहा।

उसे समय-समय पर प्रबल प्रयासोंके फलस्व-रूप भी दैवी शक्तिकी चुनौती स्वीकार करनी पड़ रही है । उसके मिथ्या बुद्धि, तर्क-वितर्क, अविद्या भरा जड़त्व ही पल्ले पड़ गया है। बढ़े हुए अज्ञानसे युगों युगोंसे संचित संस्कार, श्रद्धा, विश्वास, त्याग, क्षमा, मैत्री, एकता, परोपकार, प्रेम, आत्मीय भाव, बन्धुत्व, विनय, अनुशासन आदि महान गुण धीरे-धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। इस वर्त्तमान युगके सम्बन्धमें महर्षि श्रीवेदव्यासने बहुत पहले अन्तर्दृष्टिसे प्रत्यक्ष देखकर श्रीभागवत-माहात्म्यमें वर्णन किया है—

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुता ।
पाखण्डनिरता सन्तो विरक्ता सपरिग्रहाः ॥

(भा० मा० १म अ ३१,३२)

सत्य, तप, शौच (बाहरी तथा भीतरी पवित्रता), दया, दान आदि अब कुछ भी नहीं हैं। बेचारे जीव केवल अपने उदर भरनेमें ही लगे हुए हैं। वे असत्यवादी, आलसी, मन्द-बुद्धि, भाग्यहीन और उपद्रवग्रस्त हैं। कपटी व्यक्ति धन, स्त्री आदिका संग्रह करनेके लिये साधु-सन्तोंका वेष धारण कर स्वयं एवं जनता को धोखा देते हैं। महात्माओंके आश्रम, तीर्थ, पवित्र नदियाँ विधर्मियोंसे और देवालय दुष्टोंसे नष्ट किये जा रहे हैं।

धर्म-नीति, सदाचार, एवं प्राचीन अभ्युदयपरक संस्कारोंकी उपेक्षावृत्ति एवं आध्यात्मिकताकी विस्मृतिके कारण राग-द्वेष, कलह, अमानुषीय व्यवहार, असत्य, प्रपंच, झूठा आडम्बर, कापट्य और चातुर्य बढ़ रहे हैं। उत्पातों एवं दुर्घटनाओंका भीषण ताण्डव चल रहा है। परकी बात दूर रही, अब वह अपने स्वार्थ-लोभ एवं अहंभाव तथा अधिकारके मदमें अपने परिवारकी हिंसा करनेमें भी संकोच नहीं करता। भयानक रूपसे रेलें टकराती हैं, मोटरें चूर्ण होती हैं, वायुयान गिरते जलते ध्वंस होते हैं, जलयान डूबते हैं, भूकम्प होते हैं, ज्वालामुखी फटती हैं, बाढ़ें आती हैं—जिससे नरों, पशुओं एवं सम्पत्तिका भीषणतम विनाश होता है। पारस्परिक असन्तोष और असमान वितरणसे वर्ग-संघर्ष आदि बढ़ते चले जा रहे हैं। राज्य-विस्तार, आकांक्षाओंकी पूर्ति, आधिपत्यकी रक्षा, नश्वर भौतिक पदार्थ-संग्रह, संरक्षण अथक परिश्रम द्वारा भी संभव नहीं हो पा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें कटुता, निराशा, विवशता और विद्रोहके अंकुर पनप रहे हैं। बेकारोंकी समस्या हल करनेकी चेष्टा होने पर भी वह और भी विकराल रूप धारण कर सबको निगलनेके लिए मुख फाड़कर क्रमशः सन्निकट आ रही है। प्रशासनिक व्यय और उसकी रूपरेखाका विस्तार असहनीय होता जा रहा है। नगण्यसी बातोंको लेकर क्रान्ति उमड़ पड़ती है। राज्यों के विघटन, संकुचित भावों तथा विचारोंकी वृद्धि देखी जाती है। अपने भौतिक सुख

साधनोंकी, भोगोंकी तृष्णासे सम्बद्ध होकर अपने ही उपकारी व्यक्तियोंको स्मृति-पटलसे या अपने सामनेसे दूर करनेमें विचार नहीं करता। दुर्दमनीय संघर्ष, पारिवारिक कलह, आकस्मिक युद्ध, उत्पात, असामयिक मण्डराती मृत्युको निकट आती देखकर भी अपनेको सुखी कहनेका दम्भ भर रहा है।

शासकों और शासित प्रजाकी बुद्धि विकृत हो गयी है। देश-प्रेम, मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, स्वामी-भक्ति, पति-भक्ति दिखाई नहीं देतीं। सन्मित्रोंका अभाव हो गया है। प्रत्येक कुटुम्ब, परिवार, समाज, देशोंमें वैर भावने अपनी जड़ें जमा ली है। सभी आपसमें संघटनकी चेष्टा करते हैं, एकताकी भावनाओं को प्रश्रय देना चाहते हैं, पर उसके विपरीत होता है विघटन और पृथक्त्व।

ये विशाल भवन, राज्य सभी परिवर्त्तनशील हैं। ऊँचेसे ऊँचे पद भी परिवर्त्तनशील और अस्थायी हैं। इस शरीर पर भी किसीका कोई अधिकार नहीं। अधिकाधिक चिकित्सक और चिकित्सकालयोंके बढ़नेके साथ-साथ ही नये-नये अतर्कित रोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। असंख्य धन-राशि व्यय कर भी स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता। आज जो अपनेको स्वस्थ मान रहे हैं, कल या कुछ क्षणोंके पश्चात् ही मृत्युके ग्रास बन सकते हैं। सारी आकांक्षाएँ, स्वर्गीय स्वर्णिम कल्पनाएँ अधूरी रह जाती हैं। इन दृश्यों, घटनाओंको वह प्रतिदिन अपने सामने देखकर भी, अनुभव करते हुए भी, दूसरोंको उपदेश देने पर भी अविश्वासे कुछ क्षणोंमें ही भ्रान्त होकर सब कुछ भूल जाता है। वह अपनेको अमर मान बैठता है। मैं ही सब भोगोंको भोगूँगा—इस दुराशाके वशीभूत होकर भटक रहा है।

"अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः"—श्रीमद्भागवतके इस अटल वचनका उसे एकदम स्मरण ही नहीं रहता।

अब सद्-विद्या, सद्-शिक्षा, आत्मतत्त्व-ज्ञानके आश्रम या गुरुकुल नजर नहीं आते। केवल पाश्चात्य-रीति-नीति पर आधारित भाषा-ज्ञानके स्कूल-कॉलेज कर्मकारी उदरंभरी शिक्षा देते हैं। भारतीय वेषभूषा, विनय, अनुशासन, आचारकी इतिश्री हो गयी है। साहित्य-संगीत-कलाने पश्चिमीय आधुनिक शृङ्गार कर लिया है। चित्रपटोंके विकासने चरित्र, स्वास्थ्य, मानसिक भावोंकी विकृतिमें योग देना आरम्भ कर दिया है।

व्यापारी लोग अपने व्यापारकी चकाचौंध में धनराशि एकत्रित करनेके लोभमें सद्वस्तुओं में भी हानिकारक विषैले पदार्थ मिलाकर जन-जीवनसे खिलवाड़ कर रहे हैं। भौतिक विज्ञानसे मानवको कदापि सुख-शान्ति या आनन्दकी प्राप्ति न होगी और न वह परम प्रभुके निकटताको ही प्राप्त कर सकता है। युगों युगों तक कष्टोंको झेलता हुआ अनेकों योनियोंमें भ्रमण करेगा—यह निश्चित है।

वह काम-क्रोध-लोभ-ईर्ष्या-कलह-द्वेष-राग-अहंकार पर कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा। श्रीमद्भगवद्गीतामें काम-क्रोध-लोभको नरक-द्वार बतलाया है। अतः समय पर ही जागृत होना है। संस्कारित, संयमित, नियमित होकर परम प्रभुके पादपद्मोंकी शरण ग्रहण कर निर्भय होना है। भगवान ब्रजराज श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा परम भक्त उद्धवको परम प्रेमसे जो वचन कहे हैं, वे मननीय और पठनीय हैं।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् सात्महा॥
(भा० ११।२०।१७)

यह मनुष्य शरीर निखिल शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है। अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी सुकृतिसे सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण-ग्रहणसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका संचालन करते हैं। स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो व्यक्ति इस संसार सागरसे पार होनेकी चेष्टा नहीं करता, वह अपने ही हाथों अपने आत्माका हनन और अधःपतन कर रहा है।

महाभागवत अर्जुनसे तो भगवान्‌ने गीता में योगक्षेम स्वयं वहन करने की बात कही है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९।२२)

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरकी निरन्तर चिन्ता करते हुए निष्काम प्रेम-भावसे भजते हैं, उस नित्य-निरन्तर भजनपरायण पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

यह कल्पना नहीं है, परन्तु परम प्रभुके सर्वात्मभावसे योगक्षेम वहन करनेके अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। जिन विचारकोंने भौतिक तत्वोंकी निःसारतासे हटकर आध्यात्मिक तत्वों के पालनमें मन लगाया है, वे लोग परमानंद स्वरूप भगवानका साक्षात्कार प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं।

विदेशीय आध्यात्मिक विषयके ज्ञाता वैज्ञानिकोंके आस्तिक शास्त्रोंके श्रवण-अवलोकनसे अनुभवमें आता है कि वहाँके अनेक संस्कारित मानव या विचारक किसी न किसी रूपमें प्रेम-भावना, सद्संस्कारोंके अधीनस्थ होकर अनिर्वचनीय, अलौकिक ऐश्वर्यसम्पन्न अप्रतिम अनन्त प्रभुके निरूपण, मनन, स्मरणमें संलग्न हुए हैं। उसीको अपनी भावनाओंके अनुसार विविध रूप देकर उनकी आकृति, नाम-रूप-कार्योंमें विभिन्न भावनाएँ करते आ रहे हैं। इसका कारण है विचार, मानसिक स्थिति, देशकाल वातावरणकी विविधता।

दूसरे भौतिक वैज्ञानिक नास्तिक शास्त्रों के अनुगामी माया-समाच्छन्न देहात्मवादी अहं

के वशीभूत होकर लिङ्ग देह और स्थूल देहके प्रति निष्ठावान् हैं। अपना परम प्रभुसे जो द स सम्बन्ध है, अंशत्व रूप है, उसे भूलकर भौतिक विनाशी पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए मोहित होकर इधर उधर दौड़ रहे हैं। वहाँ भगवत्प्रेमकी अवस्थितिकी संभावना कहाँ ? ऐसी अवस्थामें उनकी शुद्धावस्था विनष्ट हो जाती है वे बद्धावस्थाके जालमें फँस जाते हैं। उनकी स्वधर्मसे विच्युति होकर वे पथभ्रष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार अध्यात्मविज्ञानवादी और भौतिक विज्ञानवादी दो दल दृष्टिगत होते है। दूसरे रूपमें इनके लिए आत्मवादी और अनात्मवादी भी नाम दे सकते हैं। आत्मतत्वज्ञान ही प्राणिमात्रमें प्रभुके रूपका दर्शन कराकर प्रभुके समीप पहुँचा देता है।

यह प्रकट करनेमें हमें गौरव बोध होता है कि यद्यपि भारतमें भी नास्तिक शास्त्रों और दर्शनोंका प्रचलन है, फिर भी यह परम प्रभु की महनीयता स्वीकार करता है और उनके पादपद्मोंमें प्रेमपूरित हो अपने विशुद्ध भावोंकी सुमनाञ्जलि अपर्ण कर उन्हें सभी प्रकारके सम्बन्धोंका आश्रयस्थान मानता है। प्रभु पर अटल विश्वास, अपूर्व श्रद्धा, और प्रेममयी उपासना भारतीय संस्कृति एवं जीवनको एक अन्यतम विशेषता है। यही भारतवर्षकी आन्तरिक चेतना है। जीवनगत चिरन्तन भाव है, जो कृतज्ञताका आश्रय लेकर परम प्रेमके रूपमें उद्भूत हुआ है, जिसका सहारा लेकर भावुक भक्त प्रभुके पदचिन्होंतक पहुँचते हैं। प्रेमका पूर्ण प्रकाश ही सृष्टिका उद्देश्य है। चोटीसे लेकर ब्रह्मातक सभी प्रेमको प्राप्त करना चाहते हैं। चिद् अचिद् सभीपर उस अचिन्त्य प्रभुके रूपकी छटा है, जो प्रेमसे एकमात्र लभ्य है। इसके बिना सुख-शान्तिकी संभावना नहीं है। सभी संबन्ध प्रेमपर आधारित हैं।

इसी सम्बन्धका ही प्रकारान्तरसे समस्त वेदों, उपनिषदों, पुराणों, सन्तों, भक्तों, आचार्योंकी वाणीमें निरूपण है, जो समस्त उपासना विधियोंका एकमात्र लक्ष्य है। अपनी भाव-तन्मयतामें आत्म-विस्मृत होकर जिसको दिव्यता प्रदान की है। यह कर्म-ज्ञानसे अत्यन्त उन्नत और श्रेष्ठ है। भक्ति ही निखिल भावनाओंका आश्रय-स्थान है। देवर्षि नारदजीने अपने भक्ति-सूत्रमें कहा है—

"नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादि भेदः।"

श्रद्धा भक्ति ही परिवृद्ध होकर प्रेमका रूप धारण करती है। भक्ति ही अनात्मवादी आसुरिक जीवोंका उद्धार कर सकती है। भौतिक मायावादी तथा त्रिविध तापोंमें संतप्त, आधिव्याधियोंसे परिपीड़ित जनसमुदायके दुःखोंको दूर कर सकती है।

'भक्ति' शब्दकी शाब्दिक उत्पत्ति 'भज्' धातुसे हुई है, जिसका अर्थ है परमेश्वरकी अनन्यभावसे सेवा या उपासना जिसमें परम प्रेमकी प्रतिष्ठा हो। भक्तिके सम्बन्धमें शाण्डित्य-सूत्रमें कहा गया है–'सा परानुरक्तिरीश्वरे'। तथा नारद भक्ति सूत्रमें कहते हैं—

"सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति च।"

श्रीमद्भागवतमें महर्षि वेदव्यासजीने भी भक्तिकी ऐसी वर्णना की है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति॥
(भा० १।२।६)

मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो। भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो। ऐसी भक्तिसे जीव आनन्दस्वरूप भगवान् को प्राप्त कर परमानन्द सागरमें मज्जन कर कृतकृत्य हो जाता है। अन्यत्र भी कहते हैं—

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥
(भा० १।२।१४)

इसलिए एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान् का ही नित्य निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधना करनी चाहिये।

नारद-पंचरात्रमें कहा गया है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते॥

इन्द्रियगण द्वारा श्रीभगवान् हृषीकेशमें तत्परत्व (सेवा) को ही भक्ति कहते हैं। ऐसी सेवा एकमात्र भगवत्पर, सब प्रकारके उपाधियोंसे रहित और निर्मल है।

परमाराध्यतम स्वयं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुजी भी कहते हैं—

न धनं न जनं सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
(शिक्षाष्टक)

हे जगदीश! मैं न धनकी अभिलाषा करता हूँ, न जन समुदाय, सुन्दरी और प्रतिष्ठाकी। मैं तो केवल यही कामना करता हूँ कि आपमें जन्म-जन्मान्तरमें भी अहैतकी भक्ति बनी रहे।

परम भक्त शिरोमणि श्रील रूप गोस्वामीजीने कहा है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

एकमात्र भगवान श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे सभी सांसारिक एवं पारलौकिक विषयों को अभिलाषासे शून्य होकर ज्ञान और कर्मादिसे रहित श्रीकृष्णके प्रति अनुकूलतायुक्त सेवा-प्रवृत्ति ही उत्तमा भक्ति है।

भगवानके नामोच्चारणमें भी महान शक्ति है, जो अन्य किसी भी साधनोंमें नहीं है। नाम जिस रूपसे भी लिया जाय, जीव को संसार यातना और सङ्कटोंकी निवृत्त होती है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥
(भा० ६।२।१४,१५)

शास्त्रज्ञ व्यक्ति यह बात जानते हैं कि संकेतसे (दूसरे अभिप्राय से), परिहासमें,

तान अलापनमें या किसीको अवहेलना करनेमें भी यदि कोई व्यक्ति भगवानके नामोंका उच्चारण करें, तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय, साँपके डसते समय, आगमें जलते समय या चोट लगते समय भी अगर विवशतासे 'हरि' यह नाम उच्चारण कर लेता है, तो वह यमयातना का और पात्र नहीं रहता।

यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
(भा० २।४।१५)

जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके समस्त पापोंको तत्काल ही नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्त्ति-युक्त भगवान श्रीकृष्णको बारम्बार नमस्कार है।

नन्दकिशोर श्रीकृष्णकी नवधा भक्तिके अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण रूपी वैधी भक्तिसे तथा रागानुगा भक्तिके अन्तर्गत सम्बन्धरूपा दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भक्तिसे और कामरूपा माधुर्यादि भक्तिसे या परा भक्तिसे भगवानको भक्त लोग वशमें करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा है—

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥
(भा० ११।१२।८)

गोपियों, व्रजकी गायों, यमलार्जुन आदि वृक्षों, हरिणों, कालिय आदि नागों तथा वृन्दावनके तरु-गुल्मादि अन्यान्य मूढ़चित्त प्राणियोंने केवलमात्र सत्संग द्वारा प्राप्त अनन्य भाव द्वारा ही कृतार्थ होकर मुझे शीघ्र ही प्राप्त किया था।

फिर मायासे भ्रमित मानव प्रभुकी असीमता, विलक्षण प्रभुत्वका क्यों न समझ रहा है - यह आश्चर्यकी बात है। व्रजेन्द्रनन्दन परम दयालु हैं, सभीके परम सखा और सुहृद हैं। कितना ही पापी क्यों न हो, अपराधी क्यों न हो, उसके अन्तस्तलसे पुकारने पर एक क्षण भी कहीं नहीं रुकते; वे दौड़कर उस व्यक्तिके निकट पहुँच जाते हैं। उन्हें किसी प्रकारकी आकांक्षा नहीं; वे प्रेमके भूखे हैं, प्रेमके लिए अपने आपको भी भूल जाते हैं, सोचमें पड़ जाते हैं।

व्याधका क्या आचरण था? ध्रुवकी कौनसी अवस्था थी? गजेन्द्रकी क्या विद्या थी? कुब्जामें नामरूपकी क्या अधिक विशेषता थी? सुदामा विप्रके पास क्या धन था? विदुरका कौन-सा वंश था? यादवपति उग्रसेन का क्या पौरुष था? भक्तिसे ही भगवान इन सब पर प्रसन्न थे न कि उनके गुणोंसे। भगवान श्रीकृष्णके लिए भक्ति ही प्रिय या अभीष्ट है।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रया:
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥
(भा० २।४।१८)

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनुग्रहसे अथवा उनके परम भक्तोंकी कृपासे भी जीवोंके सभी पाप दूर हो जाते हैं।

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीच जातियोंके व्यक्ति और दूसरे महान पापी लोग भी जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही मुक्त हो जाते हैं और परम पवित्र बन जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान भगवान्‌को बारम्बार नमस्कार है।

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः मत्सङ्गान्मामुपागताः ॥
(भा० ११।१२।७)

वे लोग (पूर्वकथित नीच जातियोंके तथा अन्त्यज प्रकृतिके व्यक्ति, इतर योनियों के प्राणी और स्त्रियाँ आदि) वेदाध्ययन, महान पुरुषोंकी सेवा, व्रत-तपस्यानुष्ठान या कोई महान कार्यादि न करके भी सत्संगके प्रभाव एवं मेरे संग प्रभावसे ही मुझे प्राप्त हुए थे।

मानवजीवनकी सफलता इसीमें है कि मनुष्य भक्तवत्सल, व्रजजनोंके सर्वस्व, कमल-नयन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका निरन्तर प्रेम-पूर्वक भजन करे। जो क्षण बिना हरिभजनके बीतते हैं, वे तो अकारण ही गये। भजनरहित मनुष्यका जीवन पशु-पक्षियोंके जीवन से भी गया-बीता और निःसार है।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥
तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥
श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नः गदाग्रजः ॥
(भा० २।३।१७,१८,१९)

जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुण-रूप-लीलादि गानमें या श्रवणादिमें व्यतीत हो रहा है उसके अतिरिक्त और सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ ही बीतती जा रही है। ये भगवान् सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयुको छीनते जा रहे हैं।

क्या वृक्ष नहीं जीवित रहते ? क्या लोहार की धौंकनी साँस नहीं लेती ? गाँवके अन्य पालतू पशु क्या मनुष्योंकी तरह खाते-पीते या मैथुनादि नहीं करते ?

जिस मनुष्यके कानमें भगवान की लीला-कथा या नामका प्रवेश नहीं हुआ, वह मनुष्य पशु, कुत्ते, ग्राम-शूकर, ऊँट और गधेसे भी गया-बीता हुआ है।

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथा ॥
भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट—
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

बर्हायिते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥
(भा० २।३।३०,२१,२२)

हे सूतजी ! जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्णकी कथा कभी भी नहीं सुनता, उसके कान साँपके बिलके समान हैं । जो जीभ भगवानकी लीलाओं का गान नहीं करती, वह मेंढ़ककी जीभकी तरह टर्र-टर्र करनेवाली है। वह अत्यन्त असती स्त्री की तरह है; उसका न रहना ही अच्छा है ।

जो सिर कदापि भगवान श्रीकृष्णके चरणारविन्दों में झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्रोंसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होने पर भी शरीरके लिए बोझा मात्र है। जो हाथ भगवान की सेवा-पूजा नहीं करते, वे सोनेके कंगनादि से भूषित होने पर भी मुर्देके हाथके समान हैं ।

जो आँख भगवानकी श्रीमूर्ति, तीर्थ, साधु-सन्त या तत्सम्बन्धी वस्तुओंका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पंखमें बने हुए आँखोंके चिह्नके समान निरर्थक हैं । मनुष्योंके पैर चलनेकी शक्ति रखने पर भी न चलने वाले पेड़ोंकी तरह हैं, जो भगवान्‌की लीलास्थलियों का दर्शन करनेके लिए यात्रा नहीं करते ।

जीव्यञ्जवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः
श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥
तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदाविकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥
(भा० २।३।२३,२४)

जिस मनुष्यने भगवन्प्रेमी सन्तोंकी चरण-धूलि कभी सिर पर नहीं चढ़ायी, वह जीता हुआ भी मुर्दा ही है । जिस मनुष्यने भगवानके चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध लेकर उसके द्वारा आनन्द प्राप्त नहीं किया, वह श्वास लेता हुआ भी श्वासरहित शव ही है ।

वह हृदय-हृदय नहीं, लोहा है, जो भगवानके मंगलमय नामोंका श्रवण कीर्त्तन करने पर भी पिघलकर उन्हीं ओर बह नहीं जाता और शरीरमें कोई प्रकारका प्रेम-विकार उत्पन्न नहीं होता; आँखोंमें आँसू नहीं आते और शरीरमें रोमांच नहीं होता ।

अतः सभी मनुष्यमात्रका यही परम कर्त्तव्य है कि वे संसारके व्यर्थ और अनिष्टकारी कार्योंमें अपना समय नष्ट न कर एकमात्र ऐकान्तिकी भक्ति द्वारा भगवान्‌की आराधना करें । यही परम बुद्धिमत्ताका परिचय है । इसी कार्य द्वारा वास्तविक सुख और शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है ।

वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

प्रचार-प्रसंग

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव–महोत्सव

गत ~~३१ मेष~~ १८ आषाढ़, ~~१५ जून~~ ३ जुलाई, शनिवारको समितिके मूल मठ और सभी शाखा मठोंमें ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव हरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सबेरे तथा शामको श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों और पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया एवं उनकी अप्राकृत शिक्षाओं और अलौकिक जीवनीपर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई।

श्रीश्री जगन्नाथदेवजी का रथयात्रा--महोत्सव

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप तथा शाखा-मठ, श्रीउद्धारण गौड़ीयमठ, चुंचड़ा में गत ~~३०~~ १६ आषाढ़, ~~१५~~ ४ जुलाई से ~~८ श्रावण~~ २८ आषाढ़, ~~२०~~ १२ जुलाई तक श्री श्रीजगन्नाथदेवजी का रथयात्रा-महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। ~~१~~ १६ आषाढ़का गुण्डिचा-मार्जन, ~~२१~~ २० आषाढ़को रथयात्रा, ~~५ श्रावण~~ २४ आषाढ़को श्रीहेरा-पञ्चमी या श्रीलक्ष्मीविजय और ~~८ श्रावण~~ २८ आषाढ़को पूर्ण रथयात्राके महोत्सव सम्पन्न हुए। उत्सवोंमें आयोजित सभाओंमें समितिके वर्त्तमान आचार्य त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज, अन्यान्य त्रिदण्डि संन्यासी महोदयों और ब्रह्मचारियोंके भाषण, प्रवचन) कीर्त्तनादि सम्पन्न हुए। छाया-चित्र द्वारा श्रीश्रीगौर-लीला और श्रीश्रीकृष्ण-लीलाकी विभिन्न निगूढ़ शिक्षाओं और तत्वोंपर प्रकाश डाला गया। निमन्त्रित और अनिमन्त्रित ~~लगभग ५०००~~ हजारों व्यक्तियोंको श्रीमहाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रील सनातन गोस्वामीका विरह-महोत्सव

श्रील गौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठों तथा मूल-मठमें गत १३ श्रावण, २९ जुलाई को पूर्णिमाकी तिथिपर श्रील सनातन गोस्वामीजीका तिरोभाव-महोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया। विशेषकर श्रीव्रजमण्डलमें यह उत्सव बड़े समारोहके साथ प्रति वर्ष ही मनाया जाता है। श्री गौड़ीय वेदान्त समितिके सदस्यगण इसी दिनसे श्रीचातुर्मास्य व्रतका संकल्प ग्रहण करते हैं। कुछ सम्प्रदायोंमें इस दिन श्रीव्यास-पूजा करने की प्रथा है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उक्त दिवस श्रील सनातन गोस्वामीके अलौकिक जीवन और अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें विशदरूपसे आलोचना की गई। सभाके अन्तमें त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने बड़े ही मार्मिक रूपसे भाषण प्रदान किया।

सुवर्ण सुयोग ! सुवर्ण सुयोग !!

उत्तर तथा पश्चिम भारतके तीर्थ-समूह का दर्शन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा इस वर्ष भी उर्ज-व्रत (कार्तिक-व्रत) के समय **श्रीव्रज-मण्डल-परिक्रमा** एवं द्वारका, हरिद्वार आदि पश्चिम और उत्तर भारतके तीर्थोंके दर्शनोंका आयोजन किया गया है। अगले २३ अक्टूबर १९६९, वृहस्पतिवारको हावड़ा (कलकत्ता) स्टेशन के ८ नं० प्लेटफार्मसे दिनके ९ बजे (स्लीपींग) रिजर्व गाड़ीसे यात्रा होगी। श्रद्धालु एवं धर्म-प्राण व्यक्तियोंसे निम्नलिखित नियमावलीके अनुसार इस यात्रामें योगदान करनेके लिये हम अनुरोध कर रहे हैं।

निवेदक—

सभ्यवृन्द

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

नियमावली—

(१) उर्जव्रत (कार्तिक-व्रत), परिक्रमा और तीर्थ-दर्शनमें लगभग ४० दिन लगेंगे।

(२) दोनों समय प्रसाद-सेवा (भोजन), हावड़ासे आने-जानेका रेल-किराया, कुली-किराया और रेल-स्टेशनसे दूरवर्ती स्थानोंके लिये बस-किराया आदिके लिये प्रत्येक यात्रीको कुल ४५५·०० रुपये भिक्षा-स्वरूप देने होंगे।

(३) प्रत्येक यात्री अपने साथ शीतोपयोगी वस्त्र, बिछौना आदि ले आवेंगे। एक छोटी थाली, एक लोटा और एक कटोरी भी साथ रखेंगे। कुल सामान १० किलोसे अधिक न हो।

(४) प्रत्येक यात्री ३०-९-६९ के भीतर ही सम्पूर्ण निश्चित धन-राशिमें से २००) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी **श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज,** श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप (नदिया), प० बंगालके निकट स्वयं या मनिआर्डर द्वारा जमा करेंगे।

(५) बाकी २५५) २३ अक्टूबर वृहस्पतिवारको समितिके परिचालकोंके निकट जमा करा देंगे।

दर्शनीय स्थान-समूह

मथुरामें आदिकेशव, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, बरसाना, नन्दगाँव, वृन्दावन, गोकुल-महावन, करौलीमें श्रीमदनमोहन, जयपुरमें श्रीगोविन्द-गोपीनाथ, गलता-गद्दी, पुष्कर, सावित्री, आदिके दर्शनोंके पश्चात् मारवाड़ होकर नाथद्वार, पोरबन्दर, सुदामापुरी, मूल-द्वारका, गोमति-द्वारका बेट-द्वारका, गोपी-तालाब आदि दर्शनोंके पश्चात् पुन; अजमेर होकर दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मण-झूला, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, त्रिवेणी, वाराणसी और गया के दर्शनोंके पश्चात् हाउड़ा लौट जायेंगे ।※

※ विशेष द्रष्टव्य—दुर्योग आदि किसी विशेष कारणसे यात्राका दिन या दर्शनीय स्थानमालिकामें परिवर्तन हो सकता है । किसी दैव-दुर्योग आदिके लिए समिति या समितिके अधिकारी वर्ग उत्तरदायी न होंगे ।

ग्रन्थ-समालोचना

'श्रीराधानाम-सुधा'

लेखक—पं० वागीशजी शास्त्री

प्रकाशक–सेठ वल्लभदास बिन्नानी,
४३, स्ट्रांड रोड,
कलकत्ता-७

श्रीवृषभानु-नन्दिनी, श्रीकृष्ण-प्रिया श्रीमती राधिकाके दुर्ज्ञेय एवं अति रहस्यपूर्ण नामों एवं उनके रहस्यपूर्ण अर्थोंका विद्वान् लेखकने बड़े परिश्रमसे विविध शास्त्रोंसे प्रामाणिक श्लोकोंकी अवतारणा करके बड़े ही सरसपूर्ण शैलीसे इस छोटे से ग्रन्थमें निरूपण किया है । भक्ति-रसके रसिकोंकी तो बात ही क्या, प्रत्येक वैष्णवके लिए यह ग्रन्थ अवश्यमेव संग्रह करने योग्य है । इसका न्योछावर भी श्रद्धापूर्वक पठन-पाठन है ।

पुस्तक मँगानेके लिये उपरोक्त प्रकाशकके पास पत्र लिखें या मिलें ।